Madhuban
by
Jyotirmayee . Shrimata

Madhuban
by
Jyotirmayee. Shrivasta

परिचय

न्यास का परिचय लिखने के लिए, इसकी प्रकाशिका
ली देवी ने मुझसे अनुरोध किया है। कहानियों
ों का मेरे जीवन से बहुत सम्बन्ध है, कदाचित् मेरे
क्षेत्र इन्हीं दो तक है। केवल इसीलिये मुझसे
य लिखने का अनुरोध किया है, ऐसा नहीं है; और
है। 'मधुबन' जब लिखा जा रहा था, संयोग से उसी
इसकी अपूर्ण कापी देखने को मिली थी। मैंने
ेक अनुरोध पालन करने के लिए उसका पढ़ना
ा था परन्तु पहले ही परिच्छेद से 'मधुबन' की रोच-
अपनी ओर आकृष्ट किया और उसका शेष अंश
र अधीरतापूर्वक मुझे माँगना पड़ा। उपन्यास मुझे
आया।

ाधार पर मैंने इसकी इधर-उधर प्रशंसा की, उसी
हित्य-निकेतन ने इसको लेकर प्रकाशित करने का
या। आज इसके छपे हुए फर्मे मेरे सामने हैं। इस
लेखिका श्रीमती ज्योतिर्मयी शिक्षित युवतियों और स्त्रियों
तक प्रकाशित हो चुकी हैं ना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए
ान' स्त्रियों के लिए बहुत र पाठिकाओं से इस उपन्यास को

हैं। अपनी साहित्यिक सेवाओं के द्वारा हिन्दी के प
पाठिकाओं से ज्योतिर्मयी जी का नाम छिपा नहीं है।

अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद ज्योतिर्मयी जी ने
शीघ्रता के साथ साहित्य में प्रवेश किया है। सन् १९३
दिसम्बर महीने तक मैं उनको एक विद्यार्थिनी के रूप
जानता था और आज सन् १९३३ में मैं उनको एक उपन
लेखिका के रूप में देखता हूँ।

मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक उप
लिखे जा रहे हैं। श्री० प्रेमचन्द जी ने अपने सर्वमान्य उप
के द्वारा हिन्दी-साहित्य का मस्तक ऊँचा किया है। औ
अनेक हिन्दी के लेखकों ने मौलिक उपन्यास लिखने का
किया है। उन्होंने लिखे भी हैं और उनमें उनको सफलत
मिली है। इस उपन्यास को पढ़कर जो मुझे प्रसन्नता हुई है,
इसको पढ़कर स्वयं मेरी बात का समर्थन करेंगे।

विदेशी उपन्यासों में जार्ज इलियट, मेरी करेली के
विश्व-विख्यात हो चुके हैं, नोबुल प्राइज़ पानेवालों में
स्त्रियाँ भी हैं। बंगला भाषा की उपन्यास-लेखिकाओं में श्र
[illegible] श्रीमती अनुपमा देवी और श्रीमती निरुप[illegible]
के नाम काफ़ी वि[illegible] हैं। हिन्दी का साहित्य आज उस अव
में नहीं है जिस अवस्था में वह दस वर्ष पहले था। यह बात
सब के लिए कम सन्तोषप्रद नहीं है। इधर 'मधुबन' लि

श्रीमती ज्योतिर्मयी ने उपन्यास-रचना में अपनी जिस प्रतिभा का परिचय दिया है, वह हिन्दी-साहित्य के गौरव की वस्तु है।

'मधुबन' सामाजिक उपन्यास है और जीवन की उन साधारण बातों को लेकर उसमें चरित्र-चित्रण किया गया है, जिनमें मनुष्य सहज ही अपने सुख-सौभाग्य की रचना के लिए छल-पाप और अनुचित मार्गों का अवलम्बन करता है, परन्तु उसका परिणाम कितना क्लेशमय और विनाशकारी होता है, इसको वह नहीं जानता। इस उपन्यास में इन बातों का इतना सुन्दर चित्र खींचा गया है कि पाठक उसकी स्वाभाविकता में उपन्यास को भूलकर अपने जीवन में प्रत्यक्ष उन बातों का अनुभव करेंगे।

यही नहीं, करुणा के समान रूपवान और शिक्षित युवतियाँ किस प्रकार अपने धर्म-बल, चरित्र-बल और आत्म-बल के द्वारा जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करती हैं और अपने चरित्र की रक्षा, धर्म की रक्षा तथा सतीत्व की रक्षा में वे किस प्रकार अपने प्राणों की बाज़ी लगा देती हैं; इसकी रोमाञ्च-कारी घटनाएँ पढ़कर स्त्रियों और पुरुषों के अन्तःकरण में चरित्र और सतीत्व के प्रति कितनी श्रद्धा उत्पन्न होती है, इसको पाठक और पाठिकाएँ स्वयं अनुभव करेंगी!

मेरा तो अपना विश्वास है कि शिक्षित युवतियों और स्त्रियों के लिए इस उपन्यास का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए मैं सभी प्रकार के पाठक और पाठिकाओं से इस उपन्यास को

एक बार पढ़ने का अनुरोध करता हूँ। 'मधुबन' को पढ़कर पाठ
आनन्द से उछल पड़ेंगे और उन्हें इस बात का विश्वास होगा
वह समय दूर नहीं है, जब हिन्दी-साहित्याकाश में ज्योतिर्मयी
की रचनाएँ पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति अपनी पूर्ण छ
दिखलायेंगी।

सब से बढ़कर खूबी इस उपन्यास में यह है कि इसके पा
और उनके चरित्र कल्पना-जगत के नहीं जान पड़ते। न
कहीं आदर्शवाद की गन्ध है और न कहीं धर्मोपदेशक अथ
सुधारक की भाँति लोगों को उपदेश देने का प्रयत्न किया गया है
इसकी सभी बातें अत्यन्त स्वाभाविक और सरल हैं। उपन्या
आदि से अंत तक सुन्दर, सरस और कलापूर्ण है।

वैशाख, सोमवती अमावस्या, संवत् १९९० वि०	गणेश पांडेय छात्रहितकारी पुस्तकमाला-कार्यालय, दारागंज, प्रया

एक बात

उपन्यास लिखने की बहुत दिनों से जो इच्छा थी, वह पूरी हुई। 'मधुवन' लिखा गया, और प्रकाशित भी हुआ। आज उसी को लेकर अपने पाठक-पाठिकाओं के सामने उपस्थित होती हूँ।

उपन्यास का साहित्य में ऊँचा स्थान है। मुझे साहित्य का ज्ञान नहीं है, कला तक मेरी पहुँच नहीं है; फिर भी मैंने उपन्यास लिखने का प्रयास किया है, यह देखकर और जानकर मेरे श्रद्धा-स्पद उपन्यास-लेखक और पाठक कदाचित् मेरी हँसी करेंगे, मैं भी उस हँसी के साथ एक बार हँस दूँगी और वह हँसी, एक दूसरे के साथ मिश्रित होकर ऊपर को उठेगी और शून्याकाश में अन्तर्हित हो जायगी !

मुझे लिखने का शौक है, उपन्यास लिखने का और भी शौक है। इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास लिखना कठिन और दुस्साध्य है; फिर भी मैं उसे सरल समझती हूँ। ऐसा समझने का कारण है। उपन्यासों में मनुष्य-जीवन की कहानियाँ रहती हैं, और उन कहानियों का, आपद्-विपद, सुख-दुख, छल-प्रपंच, रोग-शोक आदि के रूप में मनुष्य नित्य ही संस्पर्श किया करता है। फिर उपन्यास लिखने लिए और क्या चाहिए !

मानव जीवन में क्या नहीं है, वह पराये धन को लेकर सुखी और सन्तुष्ट होना चाहता है; और इस प्रकार सुख-सौभाग्य के स्थान पर दुख-दुर्भाग्य का ही वह भोग करता है ! धन और ऐश्वर्य

के मद में मनुष्य क्या नहीं करता, वह सत्य को भूल जाता है, धर्म को भूल जाता है और ईश्वर को भी भूल जाता है। अपनी सामर्थ्य और शक्ति के द्वारा वह अनाथों पर अत्याचार करता है, धार्मिकों का धर्म नष्ट करता है और अबला, असहाय किंतु प्रकृति की प्यारी दुलारी स्त्री का धर्म और सतीत्व नष्ट करने के लिए वह क्या नहीं करता! परंतु मनुष्य की शक्ति से धर्म की शक्ति बहुत बड़ी है! मनुष्य के सामर्थ्य से संसार-प्रणेता ईश्वर की शक्ति और सामर्थ्य अत्यंत महान हैं! मनुष्य उसको भूल जाता है और उसके फल-स्वरूप भीषण विपदाओं का सामना करता है!!

किसी भवन को तैयार करने के लिए, सब से पहले भूमि की आवश्यकता होती है इसके बाद ईंट गारा और सीमेंट के द्वारा उस भवन की रचना होती है। ठीक यही अवस्था उपन्यास के सम्बंध में है। भाषा, पृथ्वी की भांति आश्रय देती है और जीवन के भिन्न-भिन्न दृश्य, रूप और उनकी घटनायें, ईंट, गारा और सीमेंट का काम करती हैं।

'मधुवन' की अच्छाई और बुराई का निर्णय तो साहित्य और कला के पारखी करेंगे किंतु मुझसे जैसा कुछ हो सका, वह आपके सामने है। जिनको कुछ त्रुटियाँ मालूम हों, वे उदारता-पूर्वक मुझे क्षमा करें।

भारती-आश्रम
दारागंज, प्रयाग
२१।४।३३

विनीत—
ज्योतिर्मयी ठाकुर

मधुबन

पहला परिच्छेद

श्रावण महीने का दूसरा दिन है। आज रात से ही बदली है। सबेरे कुछ बूँदें भी पड़ी थीं जिनको देखकर मालूम होता था, लखनऊ की सड़कों पर पानी छिड़का गया है।

दोपहर ढल चुकी है, तीन से अधिक बजे होंगे। काश्मीरी मुहल्ले में रामऔतार अपने दरवाजे चारपाई पर बैठे हैं और हिंदी का कोई समाचार-पत्र पढ़ रहे हैं। उसी समय एक इक्का राम-औतार के दरवाज़े जाकर रुक गया और उससे एक अधेड़ पुरुष उतरने का प्रयत्न करने लगा। देखने में वह आदमी बीमार जान पड़ता है। इक्के पर एक सुन्दर बालिका बैठी है। उसकी अवस्था अभी बारह वर्ष से अधिक नहीं है।

यह देखते ही रामऔतार ने चारपाई से उठकर इक्के की ओर बढ़ते हुए कहा—देवीदास !

देवीदास ने धीरे से इक्के से उतरकर रामऔतार के चरणों का स्पर्श किया और इक्के से उतरी हुई बालिका की ओर देखते हुए कहा—करुणा, तुमने चाचा को पहचाना नहीं ?

बालिका ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से रामऔतार की ओर देखकर प्रणाम किया। रामऔतार ने उसका एक हाथ पकड़कर प्यार किया और उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

इक्केवाला पैसे लेकर चला गया। रामऔतार देवीदास को लेकर घर की ओर चले। दरवाज़े को पार करते हुए उन्होंने बुलाया—

दुर्गा, ओ दुर्गा, अरे देखो तो कलकत्ते से तुम्हारे दद्दू आए हैं।

दुर्गा अपने घर के भीतर से लपकती हुई बाहर की ओर आयी और रामऔतार के साथ अपनी ही अवस्था की एक बालिका को देखकर, संकोच से साथ ठिठक गयी।

भीतर जाकर रामऔतार ने एक चारपाई की ओर इशारा किया। देवीदास उसी पर बैठ गए। रामऔतार उसी चारपाई के एक आर बैठकर करुणा से पूछने लगे—तुम हमको पहचानती हो ?

करुणा ने रामऔतार की ओर आँखें उठाकर एक बार देखा और संकोच के साथ सिर नीचा कर लिया।

उसी समय रामऔतार की स्त्री राजरानी ने आकर कहा—

देवीदास, तुमतो बहुत दुबले हो गये हो तुम्हारी चिट्ठी आई थी; उसमें तुम्हारी बीमारी का हाल लिखा था; लेकिन मैं न समझती थी कि तुम इतने कमज़ोर हो गये हो।

देवीदास ने प्रणाम करके कहा—भाभी, एक साल होगया, तबीयत अच्छी नहीं रहती। खाना बिल्कुल नहीं खाया जाता। अक्सर ज्वर हो आता है। खाँसी की भी कुछ शिकायत है।

उसी समय देवीदास को खाँसी आगयी। राजरानी देवीदास की ओर देख रही थी।

रामऔतार ने करुणा से कहा—बेटी, तुम अपनी चाची को जानती हो ?

राजरानी ने करुणा का हाथ पकड़कर अपनी गोद में बिठा लिया और कहा—करुणा, क्या तुम हमको भूल गई हो ?

करुणा अपने बड़े और सुगोल नेत्रों से रामऔतार के घर को नीचे, ऊपर बार-बार देख रही थी।

देवीदास ने करुणा की ओर ध्यान से देखकर कहा—करुणा, तुमको यह घर अच्छा लगता है या वह घर, जिसको कलकत्ते में छोड़कर आयी हो ?

रामऔतार ने करुणा के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—करुणा जिस मकान को छोड़कर आई है, वह बहुत ऊँचा महल है, यहाँ तो बहुत सूना-सूना लगता होगा, क्यों करुणा ?

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। वह लज्जा और संकोच से नीचे की ओर देख रही थी।

दूसरा परिच्छेद

देवीदास और रामऔतार चचेरे भाई हैं। दुर्गा रामऔतार की इकलौती लड़की है। वह करुणा से डेढ़-दो साल बड़ी है। देवीदास कलकत्ते चले गये थे और वहाँ पर एक बंगाली बाबू के आफ़िस में काम करने लगे थे। बंगाली बाबू कलकत्ते के पुराने रईसों में से हैं। देवीदास को वहाँ पर काम करते हुए लगभग ग्यारह वर्ष बीत चुकी हैं।

बङ्गाली बाबू का कलकत्ते में बहुत विशाल मकान है, उसी के एक भाग में देवीदास सपरिवार रहा करते थे। करुणा की माँ जब मरी है तब करुणा की अवस्था बहुत कम थी। बङ्गाली बाबू के घर की स्त्रियों ने करुणा के पालन-पोषण में बड़ी सहायता की है। वहाँ रहकर करुणा को कभी पराये घर का अनुभव नहीं हुआ। उस घर की स्त्रियाँ करुणा को अपनी ही लड़को के समान समझती थीं। करुणा का रूप, सौंदर्य और स्वभाव देखकर उस घर की मालकिन ने करुणा को करुणा कहना आरम्भ कर दिया था, तबसे करुणा इसी नाम से पुकारी जाती है।

बंगाली परिवार में रहकर और बंगाली घर का जीवन पाकर करुणा बंगाली रहन-सहन ही जानती है। वह देखने में बंगाली बालिका प्रतीत होती है। वस्त्रों की बनावट, धोती के पहने का ढंग, बोलने-बताने का तर्ज़—सभी कुछ बँगला है।

देवीदास को लखनऊ आये हुए कई दिन बीत गए। यहाँ पर

न तो कलकत्ते के-से मकान हैं और न कलकत्ते का-सा जीवन है। कलकत्ते की-सी घनी आबादी और वहाँ की सड़कों की-सी भीड़ यहाँ पर नहीं है।

यहाँ पर काफ़ी खुले स्थान हैं, जिनसे स्वच्छ और ताज़ी वायु कलकत्ते की अपेक्षा अधिक मिलती है। यहाँ आकर यद्यपि करुणा को बिल्कुल अच्छा न लगता था, लेकिन देवीदास को कुछ आराम-सा मिला। उनको ऐसा बोध होने लगा कि यहाँ के जल और वायु में कुछ दिन रहकर हम स्वस्थ हो जायँगे।

जैसे-ही-जैसे दिन बीतने लगे, देवीदास की अवस्था सुधरने लगी। वे सोचने लगे, जब हमारी दशा बिल्कुल अच्छी हो जायगी तो हम फिर कलकत्ते चले जायँगे। आजकल का समय बहुत ख़राब है, बड़े-बड़े पढ़े-लिखे आदमी नौकरियों के लिये मारे-मारे फिरते हैं। हमारा काम जितना अच्छा है और हमारे मालिक जितने अच्छे हैं, उतने अच्छे आजकल के ज़माने में किसी को मिलने कठिन हैं।

देवीदास की इन बातों का रामऔतार विरोध करते, वे कहते—स्वास्थ्य के लिए कलकत्ते का जलवायु अच्छा नहीं है, कलकत्ते में ही रहने का यह फल हुआ है कि हमसे छोटे होने पर भी, हमसे अधिक बूढ़े मालूम पड़ते हो। इधर बहुत दिनों से तुम्हारा स्वास्थ्य ख़राब है। अवस्था भी और हुई, इसलिए अब अपने घर में ही रहने की बात सोचो।

राजरानी रामऔतार की ही बातों का समर्थन करती। यही नहीं टोला-मुहाल के लोग, पास आने-जानेवाले स्त्री-पुरुष—जिसको देखो, वही—देवीदास से यहीं पर रहने का अनुरोध

करता। इन बातों का यह प्रभाव पड़ा कि देवीदास का
संकल्प-विकल्प में पड़ गया।

दिन पर दिन बीतने लगे। लखनऊ आकर, अपनी सब
बड़ी हानि जो देवीदास अनुभव करते थे, वह करुणा की पढ़ा
की बात थी। करुणा को वे बहुत प्यार करते थे। देवीदास, स्व
शिक्षित थे और शिक्षा पर उनका बहुत विश्वास था। करुण
को छोड़कर देवीदास के और कोई संतान न थी। संता
के साथ पिता का क्या कर्तव्य होता है, इसका सारा उत्तर
दायित्व देवीदास करुणा के साथ अदा कर देना चाहते थे
उनका विचार करुणा को अधिक-से-अधिक पढ़ाने के लिए था।
यही नहीं, स्कूली शिक्षा के साथ-साथ देवीदास करुणा को नित्य
घर पर पढ़ाते थे। देवीदास स्वयं धार्मिक आदमी थे। धर्म पर
उनकी प्रगाढ़भक्ति थी। करुणा में वे धार्मिक भाव चाहते थे।
अँग्रेजी पढ़ने के बाद भी उसकी धर्म में प्रीति रहे इसीलिए प्रायः
नित्य ही देवीदास करुणा से रामायण का पाठ कराते थे। सीता
और सावित्री के जीवन-चरित्र पढ़कर करुणा अपने पिता से
तरह-तरह की विवेचना करती थी।

करुणा का यह वर्ष निष्फल न जाय, यह सोच-समझ कर
देवीदास ने उसको किसी विद्यालय में भर्ती करा देने का विचार
किया। कलकत्ते में करुणा ने आठवीं श्रेणी की परीक्षा दी थी
और उत्तीर्ण भी हो गई थी। देवीदास ने उसको यहाँ के एक
हाई स्कूल की नवीं श्रेणी में भर्ती करा दिया। करुणा नित्य
पढ़ने जाने लगी।

तीसरा परिच्छेद

राजरानी का कल रात से ही मुँह फूला हुआ है। आज रामऔतार जब नौकरी पर जाने लगे तो राजरानी से उन्होंने कई एक बातें कहीं, लेकिन राजरानी ने उनका जो उत्तर दिया, उनमें संतोष का भाव न था।

रामऔतार अपने काम पर चले गये। सायंकाल जब लौटकर आए और उन्होंने उस समय भी वही दशा देखी तो कपड़े उतारते हुए उन्होंने कहा—

लड़के-बच्चे तो ऐसी बातें कहा ही करते हैं, उनकी किन-किन बातों का प्रबंध किया जाय। उनकी हर एक बात को पूरा करने के बजाय, उनको समझाना-बुझाना ही अच्छा होता है।

राजरानी पहले तो न बोलना चाहती थी लेकिन फिर उससे बिना बोले न रहा गया। तरकारी काटते हुए उसने उत्तर दिया—एक ही घर में जब एक लड़का दूसरे लड़के को पहनते-ओढ़ते देखता है तो उसकी भी तबीयत होती है। हमारी लड़की ऐसी नहीं है जो उन बातों के लिए कभी कहे जो उसको न कहनी चाहिए। आज इतने दिन हो गए हैं, उसने कभी कोई बात नहीं कही। अब आख़िर लड़की ही ठहरी। देख-सुनकर उसका भी जी होता है।

कपड़े उतारकर रामऔतार चारपाई पर बैठ गये थे; राजरानी की बात सुनकर उन्होंने कहा—हम यह नहीं कहते कि

उसने कहा क्यों, या उसने ऐसा सोचा क्यों। बात यह है कि वह लड़की कलकत्ते में रहती रही है, उसका बाप लम्बी तनख्वाह पाता रहा है। यही नहीं, बंगाली बाबू के परिवार में करुणा उनके घर की-सी लड़की रही है, इसी लिए वह जो कुछ पहनती ओढ़ती रही है, यह उन बंगाली बाबू के घर का था। आज वह हमारे घर आयी है, तो उसको देखकर हम दुर्गा के लिए किस किस चीज़ का प्रबन्ध कर सकते हैं।

राजरानी का मुँह पहले ही लटका हुआ था, रामऔतार की इन बातों से और भी फूल गया। उसने क्रोध में आकर जल-भुनकर कहा—कौन कहता है तुम इन्तज़ाम करो। तुमने और भी कभी कुछ किया है या आज ही करोगे। मेरी तो देखते-देखते ज़िन्दगी बीत गई, लेकिन सदा यही रोते सुना। मेरे तो यही एक लड़की ठहरी। अगर समझती कि दो-चार हैं, तो सोचती कि इसके लिए न होगा तो उसके लिए होगा; उसके लिए न होगा तो तीसरी के लिए होगा। साल-दो-साल हमारे घर में और है जो कुछ खा-पहन लेगी, वही उसके लिये है, फिर अपने घर चली जायगी तब कौन वह हमारा खाने आयेगी या पहनने आयेगी!

दुर्गा रामऔतार की इकलौती लड़की थी, राजरानी की बातों से रामऔतार का दिल पसीज उठा, वे कुछ देर तक सोचते रहे, उसके बाद उन्होंने कहा—

अच्छा तो उसने कहा है, तो उसको करुणा की-सी धोती ला देंगे और जो कुछ कहेगी वह भी कर देंगे, इसमें हमें कुछ एतराज़ नहीं है। लेकिन (अपनी आवाज़ को धी... रानी के

र एक आदमी को अपना घर देखकर ही चलना चाहिए। हम
ैतालीस रुपये के नौकर हैं, शहर में इतनी तनख्वाह से दिन
ाटना कठिन होता है। हम सभी की बराबरी कैसे कर
ाकते हैं।

रामऔतार पर अपना प्रभाव पड़ते हुए देखकर राजरानी ने
हा—लड़के-बच्चे यह नहीं देखते। वे तो इतना जानते हैं कि
मको भी होना चाहिए। अपनी ग़रीबी-अमीरी का ख्याल तो
ा-पिता को होता है।

"हाँ, यह तो ठीक है। मगर फिर भी", कहते हुए रामऔतार
प हो गए। एक आले में रखी हुई खाली तम्बाक़ू की ओर
ारा करते हुए राजरानी से कहा—ज़रा तम्बाक़ू तो बनाओ।

यह सुनकर रामऔतार की ओर टेढ़ी आँखों से देखती हुई
ौर आले की ओर बढ़ती हुई राजरानी ने कहा—दुधपिया बच्चों
सिखाओ, लेकिन बूढ़ों को न सिखाओ!

"क्या-क्या ?" रामऔतार ने मुस्कराते हुए राजरानी से
ा—बूढ़ों को क्या ?

अपने दोनों हाथों से तम्बाक़ू मलते हुए राजरानी ने कहा—
यह तुम्हारी तम्बाक़ू न छूटे और चाहे जो कुछ किसी का
जाय।

तम्बाक़ू देने के लिए राजरानी ने अपना दाहिना हाथ राम-
तार की ओर बढ़ा दिया। रामऔतार राजरानी के मुँह की
र देख रहे थे; उनके दाँतों और होठों में मुस्कराहट भरी थी।
रानी ने अपने कपाल में सिकुड़न डालते हुए कहा—अब लेते
नहीं हो, तम्बाक़ू !

२

रामऔतार ने अपना एक हाथ फैला दिया। राजरानी ने उसी में बनी हुई तम्बाक़ू छोड़ दी। रामऔतार ने तम्बाक़ू फाँकते हुए कहा—क्यों री बूढ़ा कौन है ?

राजरानी ने मुँह बनाते हुए कहा—बूढ़ा कौन है ! बूढ़े नहीं क्या जवान हैं !

क्या हम बूढ़े हैं ?

राजरानी ने तुरन्त उत्तर दिया—और नहीं तो क्या हैं ?

रामऔतार—मर्द बूढ़े नहीं होते, स्त्रियाँ बूढ़ी होती हैं।

राजरानी—और मर्द तो दिन पर दिन जवान होते हैं। वे तो कभी बूढ़े होते ही नहीं !

रामऔतार ने कुछ भी उत्तर न दिया। राजरानी भी कुछ देर तक न बोली। उसके बाद रामऔतार ने कहा—हाँ, तो बूढ़े क्या नहीं सीखते ?

राजरानी कुछ उत्तर न देकर घर का काम करने में लग गयी। रामऔतार ने फिर पूछा—अब बताती क्यों नहीं हो ?

क्या, बताऊँ। अपनी बातें भी किसी को कुछ मालूम होती हैं ? वह दुधपिया लड़की मन मार करके रहे, उसको कोई चीज़ न लायी जाय। लेकिन तुम यह फँकनी दिनभर फाँका करो उसका आना न बन्द किया जाय।

उसी समय करुणा बाहर से आती हुई दिखाई पड़ी। उसको देखकर, रामऔतार ने पूछा—

करुणा कहाँ से आ रही हो ?

पिताजी टाँगे में बैठकर अपने किसी मित्र से मिलने गये

, मैं भी उनके साथ गई थी।' कहती हुई करुणा वहाँ से लौट-कर मकान के उस बाहरी कमरे में चली गई जहाँ देवीदास रहा करते थे।

किसी पुस्तक के पन्ने उलटते हुए रामऔतार ने राजरानी से कहा—तुमको इस बात का तो ख्याल हुआ कि करुणा की तरह दुर्गा भी सुन्दर और कीमती वस्त्र पहने, पर इस बात का ख्याल न हुआ कि करुणा की तरह वह भी लिखे-पढ़े। करुणा छोटी । लेकिन अँग्रेजी स्कूल में नवें क्लास में पढ़ती है और दुर्गा उससे बड़ी होने पर भी, हिन्दी-स्कूल में पाँचवीं कक्षा में पढ़ती है। उस पर भी रोज स्कूल से शिकायत आती है कि उसको कुछ आता-जाता नहीं है

राजरानी को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसको सब कुछ बरदाश्त था, लेकिन अपनी लड़की की निन्दा सुनना असह्य था। उसने जलकर उत्तर दिया—लड़कियाँ मर्द नहीं होतीं, जो उनको कहीं नौकरी करना हो, उनके लिए इतना ही बहुत होता कि वे चिट्ठी-पत्री लिखना सीख लें। लड़कियों का बहुत पढ़ना लिखना अच्छा नहीं होता। मैंने एक-दो को नहीं......।

अभी राजरानी की बात पूरी न हो पायी थी कि रामऔतार 'जो अच्छा होता हो वही करो,' कहते हुए घर के बाहर चले गये।

———

चौथा परिच्छेद

देवीदास, देवीदास कह कर रामऔतार ने कई बार धीरे से बुलाया; लेकिन देवीदास ने कुछ भी उत्तर न दिया। रामऔतार ने अपने दाहिने हाथ की हथेली देवीदास के माथे पर रखी। देवीदास एकाएक चौंक पड़े और रामऔतार की ओर भय तथा कातर दृष्टि से देखने लगे। देवीदास का सारा शरीर ज्वर के मारे जला जा रहा था। आँखें लाल-लाल हो गयी थीं। रामऔतार ने कहा—देवीदास, कैसी तबीयत है ?

'अच्छी है' कहकर देवीदास दरवाजे की ओर देखने लगे। रामऔतार ने देवीदास के मुख की ओर ध्यान से देखा और कुछ देर तक चुपके खड़े रहे। उनके पीछे राजरानी खड़ी थी। उसने कहा—इतनी दवा होती है लेकिन कुछ लाभ नहीं होता।

रामऔतार—आज बुखार और दिनों से अधिक है। इतना किसी दिन नहीं रहा।

राजरानी ने आगे बढ़कर देवीदास के पेट पर हाथ रखा और कहा—हाँ, आज बुखार बहुत है। कल शाम को डाक्टर साहब कह रहे थे कि कल बुखार कम हो जायगा लेकिन आज तो और दिनों से भी बढ़ गया है।

उसी समय पड़ोस के दो-तीन आदमी आ गये उनको देखते ही रामऔतार ने उनको कमरे के भीतर बुला लिया। आने वाले

आदमियों में से एक ने पूछा—आज देवीदास का बुख़ार कैसा है ?

रामऔतार ने कहा—आज तो कल से अधिक बुख़ार है। अभी कल तक ऐसी हालत न थी। बुलाने से बोलते थे, सब से बातें करते थे।

उस आदमी ने चारपाई के पास बैठकर देवीदास का दाहिना हाथ कपड़ों के नीचे से निकाला और उनकी नाड़ी देखते हुए उसने पूछा—देवीदास, आज तुम सुस्त बहुत हो ?

देवीदास ने उस आदमी की ओर देखकर कहा—हाँ, आज बुखार अधिक है। सिर में पीड़ा हो रही है, आँखों की पलकें अपने आप झुकी जाती हैं।

उस आदमी ने पूछा—क्या कुछ नींद मालूम होती है ?

देवीदास—नींद नहीं, आँखें बन्द कर लेने में ऐसा मालूम होता है जैसे कुछ आराम मिलता हो।

उस आदमी ने दोनों हाथों की नाड़ियाँ देखीं और फिर कपड़ों से हाथों को ढककर वह रामऔतार से बातें करने लगा—एकाएक इनकी तबीयत कुछ ऐसी ख़राब हो गयी कि जिस दिन से बुख़ार आया है, उस दिन से घटने का नाम नहीं लेता। सब को बड़ी आशा थी कि बुख़ार आज कम हो जायगा लेकिन आज तो और दिनों से भी अधिक हो गया है।

रामऔतार ने कहा—कलकत्ते से आए हुए इनको चौदह-पन्द्रह महीने हो गए। इनकी तबीयत कुछ बहुत अच्छी नहीं रही। कलकत्ते से जब पहले-पहल आए थे तो कुछ ही दिनों में

ऐसा मालूम हुआ था कि यहाँ इनकी तबीयत बहुत अच्छी रहेगी। लेकिन उसके बाद, दस-पाँच दिन यदि अच्छे रहते तो दो-तीन दिन बीमार रहते, इस प्रकार दिन कटते रहे।

पास ही खड़ी हुई राजरानी ने कहा—जब कलकत्ते से आए थे तब इनकी हालत बहुत ख़राब थी। शरीर बिल्कुल पीला पड़ गया था। इनमें इतना भी पौरुष न था जो चल-फिर सकते। यहाँ आने पर इनको बहुत कुछ लाभ हुआ। लेकिन इन्होंने न तो लगकर कुछ दवा का ही सेवन किया और न अपने शरीर की बड़ी हिफ़ाज़त ही रखी, बल्कि जब कभी कुछ सुनने को मिला तो यही सुना कि देवीदास कलकत्ते जाने की बात सोच रहे हैं। हम दोनों आदमियों ने हमेशा इस बात का विरोध किया कि कलकत्ते जाने की ज़रूरत नहीं है।

उस आदमी ने कहा—कलकत्ते में ही रोग ने इनको कुछ ऐसा पकड़ा है कि फिर वह शरीर से निकला नहीं है। उधर के लोगों को कलकत्ता चाहे जैसा हो लेकिन हम तो देखते हैं कि इधर के लोगों को कलकत्ते का जल-वायु कभी अनुकूल नहीं हुआ।

कुछ देर तक सभी लोग बैठे हुए बातें करते रहे। उसके बाद आने वाले आदमी उठकर चले गये थोड़ी देर में रामऔतार ने देवीदास से पूछा—देवीदास, क्या किसी दूसरे डाक्टर को बुलाकर तुमको दिखावें ?

देवीदास ने करवँट बदलते हुए कहा—जैसा तुम उचित समझो, करो।

रामऔतार—हमारी इच्छा है कि कल डाक्टर घोष को बुला

कर तुमको दिखा दें। आजकल लखनऊ में डाक्टर घोष का नाम है।

'अच्छी बात है, बुलवा लेना', कहकर देवीदास ने पूछा—करुणा कहाँ है?

राजरानी ने उत्तर दिया—वह पढ़ने गई है। छुट्टी होगी तब आवेगी।

देवीदास—छुट्टी होने में अभी कितनी देर है?

रामऔतार ने बाहर धूप की ओर देखते हुए कहा—दो बज गये होंगे। अब उसके आने में बहुत देरी नहीं है।

राजरानी ने पूछा—क्यों करुणा की कैसे याद आयी। वह तो तुम ही से पूछकर पढ़ने गयी थी।

देवीदास ने गहरी साँस लेकर कहा—यहाँ कमरे के भीतर लेटे लेटे समय का कुछ पता नहीं चलता, इसीलिए साधारण ही पूछ लिया; और कोई बात नहीं है।

राजरानी ने रामऔतार से पूछा—क्या आज शाम को डाक्टर घोष को लाओगे?

रामऔतार ने कहा—आज शाम को, शाम को नहीं, उनका लाना सुबह अच्छा होगा। शाम को अगर उनको बुलावेंगे तो वे बिना सुबह नाड़ी देखे अपनी कोई दवा न देंगे। ऐसी दशा में शाम को बुलाना बेकार है।

राजरानी ने अपना सिर खुजलाते हुए कहा—हाँ, यह तो ठीक है; सबेरे जाकर उनको लिवा लाना। रात किसी प्रकार कट

ही जायगी। बीमारी की रात बड़ी भयानक होता है। दिन तो जैसे तैसे कट जाता है लेकिन रात काटे नहीं कटती।

कुछ ठहरकर रामऔतार ने कहा—डाक्टर घोष पर हमारा बहुत विश्वास है। ईश्वर चाहेगा तो उनकी दवा से फ़ायदा होगा। किसी तरह से आज की रात कट जाय।

कुछ देर तक रामऔतार वहीं बैठे हुये राजरानी से बातें करते रहे। और उसके बाद उठकर वहाँ से चले गये। उनके जाने के बाद, देवीदास ने एक बार दरवाज़े की ओर देखा और फिर मुँह ढक लिया। पिछली दो तीन रातें जिस प्रकार बीती थीं, देवीदास को वे भूली नहीं थीं। रात फिर आ रही है यह सोचकर देवीदास का हृदय स्वयं अस्थिर होने लगा उनके दिल में अनेक प्रकार की बातें उठने लगीं और उन्हीं को सोच-विचार कर वे अपना समय काटने लगे। जिस बात की आशंका होती है, उसके आने में देर नहीं लगती।

रात का भयानक अंधकार था। अपने कमरे में देवीदास ने देखा और कोई नहीं है। कहीं से कुछ आवाज़ भी नहीं आती। कमरे के बाहर अंधकार, चारों ओर अंधकार! उस अंधकार में अचानक भय का आभास हुआ। देवीदास ने देखा, कमरे के दरवाज़े से होकर, कोई हमारी ओर आ रहा है। यह कौन है! हमारे पास क्यों आ रहा है! बात-की-बात में चारपाई के निकट एक, दो, तीन! चारपाई में कुछ आवाज़ हुई, जैसे कोई उस पर बैठ रहा हो। देवीदास का हृदय भय से काँपने लगा!

सिर घुमाकर देवीदास ने इधर-उधर देखा। दरवाज़ा जो पहले खुला था, और जिससे बाहर अंधकार का दिखाई पड़ता था, वह

भी बन्द हो गया। पहले जो अंधकार था वह अंधकार और भी भयानक हो गया। किसी ने एकाएक उनके पैर पकड़ लिए। इतने ज़ोर से पैर पकड़े कि देवीदास घबराकर चिल्ला उठे। लेकिन उस चिल्लाने का कोई नतीजा न हुआ। देवीदास ने कुछ और कहा, कहने का प्रयत्न किया पर घें.........ओं.........ऐ.........। गला रुक गया!

घें-घें करके कुछ आवाज़ निकली और रुक गयी। देवीदास ने अपने हाथ उठाने चाहे, लेकिन वे न उठे। देवीदास बहुत छटपटाये, पर वे न उठे। दोनों ही हाथ चारपाई में रस्सी से बँधे हुए थे। जिस आदमी ने पैर पकड़े थे, वह अब भी पकड़े था—ऐसा मालूम होता था मानों पैरों की मोटी हड्डियाँ टूटी जाती हों। एकाएक चारपाई हिलने लगी! देवीदास की आँखें बराबर काम करती थीं, लेकिन उनसे दिखाई न पड़ता था! अकस्मात् कमरे में प्रकाश हुआ! देवीदास ने देखा, तीन काले आदमी, भयानक आदमी! यह कौन हैं! एक आदमी का मुँह सामने हुआ! ओह! डर और भय से देवीदास के प्राण छटपटा उठे! नेत्र अवरुद्ध होगये। आँखें फिर खोलीं तो फिर वही भयानक अंधकार!

कुछ देर में दरवाज़ा खुलता हुआ दिखाई पड़ा। बाहर का कुछ प्रकाश आँखों में आया। देवीदास ने देखा, प्रातःकाल हो गया है। वह अंधकार अब नहीं है। लेकिन कमरा फिर भी अंधकार पूर्ण था। दरवाज़े के बाहर, बड़ी दूर तक कुछ प्रकाश नज़र आने लगा। देवीदास ने देखा, एक स्त्री सफ़ेद वस्त्र पहने हुये आ रही है। देवीदास ने टकटकी लगाकर उसकी ओर देखा। ओहो; यह भयानक आदमी उसके पास कौन! उस स्त्री के सिर के बाल

खुले हुए हैं ! गोरा और मोटा-सा बदन है ? अवस्था अधिक नहीं ! वह आदमी उसके पहुँच गया ! स्त्री ने चौंककर उसकी ओर देखा, भीषण दृश्य ! देवीदास का हृदय टुकड़े-टुकड़े होने लगा ! लेकिन नेत्रों को छोड़ कर उनके शरीर का कोई अंग काम न करता था। देवीदास ने देखा, उस पर पिशाच का उपक्रम ! सुन्दरी का अद्‌भुत दृश्य !!

एकाएक रामऔतार ने कमरे में आकर घबराकर देवीदास से शरीर का स्पर्श करते हुए बुलाया—देवीदास, देवीदास।

देवीदास ने चौंककर आँखें खोल दीं। दिन के चार बजने का समय था। चारों ओर हल्की धूप थी। देवीदास ने गहरी साँस ली और रामऔतार की ओर भय तथा कातर दृष्टि से देखने लगे। देवीदास के नेत्रों से आँसू टूट टूटकर गालों से बहते हुए नीचे गिर रहे थे।

रामऔतार ने अपने हाथों से उनके आँसुओं को पोंछते हुए कहा—देवीदास, तुम क्यों रो रहे हो ?

देवीदास ने अपना एक हाथ रामऔतार के गले में रखते हुए जोर के साथ ठण्ढी साँस ली और कहा—हमने अभी एक बहुत भयानक सपना देखा है ! करुणा कहाँ है ?

करुणा कहाँ है, कहते कहते देवीदास के नेत्रों से गर्म आँसुओं की झड़ी लग गई। छाती पर से कपड़ों को खींचकर, उन्होंने अपना मुंह ढक लिया और वे फूट-फूट कर रोने लगे।

रामऔतार का हृदय अस्थिर हो उठा, उन्होंने अपने आपको सम्हाल कर कहा—देवीदास, तुम तो पढ़े-लिखे आदमी हो। सपने पर इतना घबरा रहे हो। इधर देखो। अपना जी कड़ा करो।

कुछ ठहरकर रामऔतार ने फिर कहा—करुणा स्कूल से आ गयी है। हमने उसको तुरंत तुम्हारे पास नहीं आने दिया। दुर्गा की माँ से कहा कि इसको कुछ खिला-पिला दो। स्कूल से आयी है, भूखी होगी, उसके बाद देवीदास के पास भेजना।

देवीदास ने अपना मुँह खोला। हृदय को शांत किया। कुछ ठहर कर कहा—सपना, ओह, इतना भयानक!

कुछ देर तक रामऔतार और देवीदास बातें करते रहे। उन बातों से देवीदास को बहुत कुछ संतोष मिला। उसी समय करुणा ने कमरे में प्रवेश किया और देवीदास के पास जाकर, सिर पर हाथ रखते हुए पूछा, आज दिन को कैसी तबीयत रही?

देवीदास ने बड़ी देर तक करुणा के मुँह की ओर देखा, उनकी आँखों में आँसू भर आये। मुँह से कुछ उत्तर न निकला।

तुम क्या रोते हो, कहकर करुणा ने तुरंत अपने दाहिने हाथ को उठाकर अपनी आँखों पर रख लिया। देवीदास ने अपने को सम्हाल कर करुणा का हाथ खींचा। करुणा के नेत्रों से आँसुओं के कुछ बूँद देवीदास के कपड़ों पर गिरे। देवीदास ने कहा—हम रोते नहीं हैं, सबेरे से तुमको देखा नहीं था, इसलिए आँखों में आँसू आगए।

करुणा ने कहा—मैं कल से स्कूल न जाऊँगी।

———

पाँचवाँ परिच्छेद

डाक्टर घोष को दवा करते-करते कई दिन हो गए, लेकिन कुछ लाभ न हुआ। देवीदास की बीमारी दिन-पर-दिन भयानक होती गयी और अन्त में वे अपने प्राणों से भी प्यारी-दुलारी करुणा को दीन और असहाय अवस्था में छोड़कर संसार से चले गये !

देवीदास की मृत्यु के बाद करुणा रामऔतार के घर में रहने लगी। मातृ-पितृहीना बालिका का रामऔतार बड़ा स्नेह करते। राजरानी भी उसको इतने आदर के साथ रखती कि जिसमें करुणा को पिता का वियोग भूला रहे। टोला और पड़ोस की स्त्रियाँ आ-आकर करुणा को शान्त करने की चेष्टा किया करतीं। कोई स्त्री कहती—बेटी करुणा, तुम अब अपने पिता को भूल जाओ। अपने चाचा को ही अपना पिता समझो। क्या किसी के माता-पिता सदा जीते हैं। लड़की अपने माता-पिता के साथ कितने दिन रह सकती है। उसको तो माता-पिता को एक दिन छोड़ ही देना पड़ता है।

करुणा को समझाते हुए कोई स्त्री कहती—बेटी तुम समझदार हो। पढ़ी-लिखी हो, तुमको भला कोई क्या समझावे। तुम इतना रोती हो, सिर पीटती हो, लेकिन कहीं तुमको उनके दर्शन होते हैं ? उनको जाना था, चले गए। अब तुम अपने हृदय को शान्त करो। यही चाचा-चाची तुम्हारे माता-पिता हैं।

कोई कहता—करुणा सब प्रकार अनाथ होगयी। जब छोटी

थी, तब माता न रही। जब कुछ बड़ी हुई तो पिता भी न रहे। ईश्वर जिसके पीछे पड़ता है, उसको मिटाकर ही छोड़ता है। जिसकी यहाँ जरूरत है उसकी वहाँ भी जरूरत है। सैकड़ों ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जो मरने के लायक हैं, मरना भी चाहते हैं, लेकिन ईश्वर उनको नहीं पूछता! जो मरने के लायक न थे, जिनके बिना संसार की अनेक आत्माएँ अनाथ हो सकती हैं, उनकी जरूरत ईश्वर के घर में भी होती है।

एक-एक करके अनेक दिन बीत गए। पिता की बीमारी के दिनों में करुणा कुछ दिनों तक पढ़ने न गयी थी। अब वह फिर पढ़ने जाने लगी। इस वर्ष करुणा को दसवीं श्रेणी की परीक्षा देनी थी। स्कूल में करुणा का बड़ा आदर था। सभी अध्यापिकाएँ करुणा का प्यार करती थीं। प्रधान अध्यापिका के हृदय में तो करुणा के लिए बड़ा आदरपूर्ण स्थान था। वे उससे बातें करने के लिए बड़ी उत्सुक रहती थीं। प्रायः वे कहा करतीं, करुणा की बातों में मिठास है।

जिस दिन से करुणा के पिता का स्वर्गवास होगया है, उस दिन से ऐसा कोई न था जिसको करुणा पर दया न आती हो। देवीदास की मृत्यु के बाद राजरानी ने निश्चय किया था कि अब करुणा के पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। इसी विचार से उसने करुणा को स्कूल जाने से रोक रखा था।

एक दिन प्रधान अध्यापिका रामऔतार के घर गयीं और रामऔतार से पूछा—करुणा पढ़ने क्यों नहीं जाती?

रामऔतार ने वेदना के साथ उत्तर दिया--उसके पिता जब बहुत बीमार होगए तो उसने जाना बन्द कर दिया था। उसके

पिता की बीमारी अच्छी न हुई और उसके बाद उनका स्वर्गवास हो गया। इसीलिए करुणा का स्कूल जाना बन्द रहा है।

रामऔतार जहाँ पर यह बातें कर रहे थे, राजरानी भी वहाँ खड़ी थी। रामऔतार की बात समाप्त हो जाने के बाद उसने कहा—अब करुणा का पढ़ना नहीं हो सकता। वह अब छोटी नहीं है, सयानी हुई। घर में रहेगी, घर का काम-काज सीखेगी।

प्रधान अध्यापिका को यह बात अच्छी न लगी। लेकिन उन्होंने अपने मन के भावों को बदल कर कहा--देखिए, करुणा बहुत होनहार लड़की है, इसका आप पढ़ना बन्द न कीजिए। यह लड़की अगर पढ़ाई जायगी तो सब कुछ हो सकती है। इसके सिवा, देवीदास को शिक्षा से बड़ा प्रेम था। वे करुणा को ऊँची शिक्षा देना चाहते थे। जब उन्होंने करुणा को हमारे स्कूल में भर्ती किया था तब से लेकर कई बार उन्होंने मुझसे बातें की थीं। उनकी बातों से मैं यह समझ सकी थी कि लड़कियों की शिक्षा के सम्बन्ध में उनके बहुत ऊँचे विचार थे। उनकी मृत्यु के बाद यदि करुणा का पढ़ना बन्द कर दिया जायगा तो मैं समझती हूँ कि इससे देवीदास की आत्मा को बहुत दुख होगा। इसलिए मेरी आप लोगों से प्रार्थना है कि करुणा का पढ़ना-लिखना आप लोग बन्द न करें।

प्रधान अध्यापिका की इन बातों का रामऔतार पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने उदारता पूर्वक उत्तर दिया—नहीं, उसका पढ़ना बन्द नहीं करें।

उसी समय करुणा ने कहीं से आकर प्रधान अध्यापिका को

...ाम किया। करुणा का हाथ पकड़ कर प्यार करते हुए प्रधान ...ध्यापिका ने पूछा—करुणा, क्या तुम पढ़ना-लिखना छोड़ ...गी ?

करुणा ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—नहीं; मैं पढ़ना-लिखना नहीं बन्द करूँगी।

उस दिन से करुणा नित्य पढ़ने जाती है। स्कूल की सभी ...ड़कियाँ और अध्यापिकाएँ करुणा को इतना प्यार करती हैं ...के करुणा को अपने पिता की मृत्यु का दुख, जब तक वह स्कूल ... रहती है, भूला रहता है।

जिस विधाता ने करुणा को माता-पिता से अनाथ किया है, उसी ने उसको इतना रूपवान और गुणवान बनाया है कि करुणा सभी के लिये मनोरञ्जन हो गयी है। यही नहीं, वह पढ़ने-लिखने में इतनी पटु है कि सभी अध्यापिकाएँ देख कर आश्चर्य ...रती हैं।

रामऔतार नित्य अपने काम पर जाते। शाम को दुर्गा और करुणा को बिठाकर खूब बातें करते। समय मिलने पर दोनों लड़कियों को लेकर वे घूमने भी जाते और अपने उपाय में इस बात की चेष्टा करते कि करुणा को किसी कष्ट का अनुभव न हो।

रामऔतार से बातें करते हुए करुणा कहती—पिता जी हमको बहुत चाहते थे। जब मैं किसी बात को कहती तो वे इनकार न करते थे। रोज जब वे बातें करते तो मैं ध्यान से उनकी बातों को सुनती थी। उनकी बातों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ता था।

रामऔतार, उसके पिता की बातों का प्रसंग बदलने विचार से, उससे पूछते—करुणा ! तुमने कलकत्ते के बंगाली के घर का कुछ हाल नहीं बताया।

करुणा—क्या बताऊँ, जो कुछ पूछिए, सो बताऊँ।

रामऔतार—अरे यही कि उनके घर में कौन-कौन था, वहाँ कैसे रहती थीं। कौन तुमसे कैसे बोलता था।

करुणा--बंगाली बाबू के घर में सब कोई मुझे प्यार करते पहले मैं हिन्दी-अँग्रेजी स्कूल में पढ़ती थी। उसके बाद बंग बाबू ने पिता जी से कहा कि करुणा को भी हमारी लड़कियों साथ पढ़ने का प्रबन्ध कर दो। वहाँ अच्छा रहेगा। इस पर पि जी ने हमको भी वहीं भर्ती करा दिया। बंगाली बाबू लड़कियों के साथ मैं भी मोटर पर बैठकर नित्य पढ़ने जाती थी बंगाली बाबू जब अपनी लड़कियों को मोटर पर बैठाकर घुमा ले जाते ! तो मैं भी उनके साथ जाती थी। उनके घर की स्त्रि हमसे बहुत स्नेह करती थीं।

रामऔतार--तो उनके साथ तुम हिन्दी में बातें करती या बंगला में।

करुणा--हिन्दी में नहीं, बँगला में। वे लोग हिन्दी कै समझ सकती हैं। आदमी तो हिन्दी समझते भी हैं और बोल भी हैं लेकिन लड़कियाँ और स्त्रियाँ नहीं समझतीं।

रामऔतार--तो तुमको बँगला बोलने का खूब अभ्यास करुणा ने उत्साहपूर्वक कहा--हाँ।

रामऔतार—तो, जैसे उनके घर की लड़कियाँ और स्त्रियाँ

बँगला बोलती थीं, वैसे ही तुम भी बोलती थीं कि और किसी तरह ?

करुणा—वैसे ही मैं भी बोलती थी।

रामऔतार—अच्छा, हमको आज ही मालूम हुआ है कि करुणा बंगला बोलना खूब जानती है।

कहते-कहते रामऔतार के मुँह में मुस्कराहट आगई। करुणा के कोमल होठों पर भी मृदुल हास्य का आभास हो आया।

रामऔतार ने सिर हिलाकर कहा—अच्छा तो, करुणा तुम अपनी बँगला हमको सुनाओ।

करुणा ने मुस्कराते हुए कहा—ऐसे नहीं सुनाया जाता।

रामऔतार—तो हम समझ गये कि तुमको बोलना तो आता नहीं, ऐसे ही झूठ-मूठ बातें बनाती हो।

दुर्गा वहीं पर बैठी थी, उसने ज़ोर से कहा—नहीं चाचा, यह बँगला बोलती हैं। एक दिन तुम अपने दफ़्तर गये थे, इनके स्कूल की एक अध्यापिका आई थीं, उनसे ये बँगला में ही खूब बातें करती रही थीं।

रामऔतार—क्यों करुणा ?

करुणा ने दुर्गा की ओर देखकर कहा—किस दिन ?

दुर्गा—उसी दिन, जब तुम स्कूल से आकर कपड़े उतार रही और उसी समय वे आगई थीं, उसी दिन ?

करुणा—अच्छा हाँ, ठीक है, अब याद आगया।

रामऔतार—तो वे तुम्हारी टीचर थीं, करुणा !

करुणा—नहीं, हमारी टीचर तो नहीं हैं, हमारे स्कूल टीचर हैं। हमसे बहुत बातें करती हैं। एक दिन अपने घर हमक लेगई थीं। उनका घर बहुत सुन्दर है। उनकी एक छोटी लड़की है, वह जब बातें करती है तो बहुत अच्छा लगता है।

दुर्गा--वह भी बंगला बोलती होगी !

दुर्गा की बात सुनकर रामऔतार ने हँस दिया, करुणा उसके ऊँटपटाँग की बात से उसकी ओर देखने लगी। रामऔतार ने मुँह बनाते हुए कहा—

नहीं, वह हिन्दी बोलती होगी।

करुणा और दुर्गा दोनों ही हँसने लगीं।

छठा परिच्छेद

अवकाश मिलने पर करुणा अपने आस-पास के घरों में आया जाया करती थी। वह जहाँ जाती थी, वहाँ की स्त्रियाँ उसका आदर करती थीं। उससे तरह-तरह की बातें करती थीं। करुणा से बातें करने में उनको अच्छा लगता था।

करुणा के साथ उसी स्कूल में सुशीला नाम की एक लड़की पढ़ती थी। सुशीला का घर करुणा के घर के पास ही था। एक दिन करुणा वहाँ बैठी हुई सुशीला से बात कर रही थी। उस घर की बहू ने अपनी पुरानी धोती सिलते हुए कहा—

करुणा, तुमको तुम्हारी चाची अच्छी तरह रखती हैं ?

करुणा ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ।

बहू—तुमको कभी कुछ कहती-सुनती तो नहीं ?

करुणा ने सिर हिलाते हुए कहा—नहीं।

बहू ने फिर पूछा—और दुर्गा से तुम्हारी कभी लड़ाई तो नहीं होती ?

करुणा अभी उत्तर न दे पायी थी कि सुशीला ने हँस कर कहा—लड़ाई, लड़ाई तो दिन-भर हो, लेकिन करुणा कुछ बोलती ही नहीं है।

बहू ने मुस्करा कर कहा—क्यों करुणा ?

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। पास ही एक चारपाई पर एक वृद्धा स्त्री लेटी थी। उसने करुणा की ओर करवट बदलते हुए कहा—भला दुर्गा की किसी से लड़ाई न होगी ! आदमी तो आदमी ही, वह दरख्तों से भी लड़ सकती है।

बूढ़ा की बात सुन कर सुशीला जोर से हँस पड़ी। बहू के साथ-साथ करुणा भी हँसने लगी। थोड़ी देर तक किसी के मुँह से कुछ न निकला उसके बाद बहू ने पूछा—क्यों करुणा तुमको अपनी माँ की कभी याद आती है ?

करुणा ने सिर उठाकर बहू की ओर देखा। उसकी आँखें किसी आन्तरिक वेदना से नीचे की ओर झुकी जा रही थीं। उसने कुछ भी उत्तर न दिया।

चारपाई पर लेटे-लेटे बुढ़िया ने कहा—अपने माता-पिता की किसको याद नहीं आती।

बहू ने करुणा की ओर देख कर फिर पूछा—करुणा तुमने कुछ बताया नहीं।

करुणा ने कहा—क्या बताऊँ।

बहू—यही, कि तुमको कभी अपनी माँ की याद आती कि नहीं ?

करुणा ने दुःख के साथ कहा—आती क्यों नहीं।

उत्तर देकर करुणा ने अपना सिर नीचा कर लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आए। यह देख कर वृद्धा स्त्री ने कहा—कुछ रञ्ज न करो। जिसने तुमको अनाथ किया है, वही तुम्हें सनाथ करेगा। एक दिन सभी के दिन फिरते हैं। तुम्हें ईश्वर ने बहुत बिगाड़ा है। अब और क्या बिगाड़ेगा !

बुढ़िया की बातें बहू ध्यान-पूर्वक सुन रही थी और बार-बार करुणा की ओर देखती जाती थी। करुणा के दुःख से उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए जाते थे। बहू ने एक ठण्ढी साँस खींची और कहा—करुणा तुम्हारी ही तरह मेरी माँ भी मेरे छोटेपन में मर गयी थी। मैं इतनी छोटी थी कि मुझे उसकी याद नहीं है।

बहू की बात समाप्त होते-होते बुढ़िया ने कहा—'तुम्हारी माँ मर गयी थी, तुम्हारे बाप ने दूसरा विवाह कर लिया था।' बुढ़िया की बात सुन कर करुणा और सुशीला बहू की ओर देखने लगीं।

बहू ने मुँह बना कर कहा—तो उससे क्या ?

बुढ़िया—उससे यह कि तुम्हारी माँ मर गयी थी, तुमको दूसरी माँ मिल गयी।

बहू ने आँखें चढ़ाकर कहा—ऐसी माँ से बे-माँ की अच्छी।

बुढ़िया ने सिर उठाकर जवाब दिया—उसी अपने काले कलूटे बाप से कहती।

बहू ने नाक सिकोड़ते हुये कहा—देखो, हमारे बाप को काला कलूटा न कहना।

बुढ़िया—नहीं तो।

बहू ने कुछ भी उत्तर न दिया। बुढ़िया ने फिर पूछा—अब बोलती क्यों नहीं है। काला-कलूटा न कहूँगी तो क्या उसे गोरा कहूँगी?

बहू ने बुढ़िया को कुछ उत्तर तो न दिया लेकिन मन-ही-मन कुछ बुदबुदा कर होंठ चलाने लगी।

सुशीला ने मुस्कराते हुये कहा—ज़ोर से क्यों नहीं कहती मुँह के भीतर क्या कहती हो?

बहू ने कहा—अच्छा, अब तुम बोलीं?

सुशीला ने कहा—क्यों, क्या बोलने के लिये नाक कटाई है?

बहू—तो फिर कहो जो कुछ कहना हो, तुम भी कह डालो।

सुशीला ने हँसकर कहा—भाभी, काले आदमी क्या खराब होते हैं?

बहू—अपने मन से पूछो। मुझसे क्या पूछती हो?

करुणा और सुशीला, दोनों हँसती हुई बाहर चली गयीं। उसी समय दुर्गा ने आकर कहा—सुशीला, अभी तक तुम कहाँ थीं। बड़ी देर से मैं तुमको ढूँढ़ रही थी।

सुशीला—मैं अपने घर में थी, और कहाँ थी।

दुर्गा ने तेज़ी के साथ कहा—तो अभी थोड़ी देर हुई, मैंने तुमको यहीं से पुकारा था, तुम बोली क्यों नहीं?

सुशीला ने कहा—हम लोग वहाँ बातों में लगी थीं। तुम्हारा पुकारना वहाँ सुना ही नहीं पड़ा। मैं बोलती कैसे।

करुणा ने पूछा—दुर्गा, तुम घर से आ रही हो? चाची मुझे कुछ कहती तो न थीं?

दुर्गा ने कहा—मैं तुमसे भी पहले की घर से निकली हूँ।

करुणा—तो फिर चलो, घर नहीं चलोगी?

दुर्गा ने कहा—घर चलकर क्या करेंगी। चलो सुशीला के यहाँ बैठें। कुछ देर बातें करें।

तीनों फिर भीतर चली गयीं और एक जगह बैठ कर बातें करने लगीं। उसी समय बुढ़िया की आँखें दुर्गा पर पड़ीं। उसने कहा—अच्छा अब दुर्गा भी आगयी।

सुशीला ने हँसकर कहा—दुर्गा न आती तो हम लोगों की कमी बाक़ी ही न रह जाती।

सुशीला की बात सुनकर करुणा और दुर्गा भी हँस पड़ीं बहू भीतर एक कोठरी में चली गयी थी। वह हँसती हुई लौटी और कहने लगी—दुर्गा तुम आ गयीं? बस तुम्हारी ही कमी थी।

बहू की बात को सुनी अनसुनी करके बुढ़िया ने कहा—दुर्गा बहुत सयानी हो गयी है। रामऔतार इसके विवाह की कुछ फ़िक्र नहीं करते?

बहू ने कहा—फ़िक्र क्यों नहीं करते। अभी उस दिन तो दुर्गा की अम्मा आई थीं, वे कहती थीं न, कि दुर्गा के बाप लड़के की खोज में बाहर गये हैं।

बुढ़िया—हाँ, कहती तो थीं। लेकिन सयानी लड़की का ब्याह हो जाना ही अच्छा होता है। हमारे बाप कहा करते थे कि लड़की का ब्याह नौ-दस वर्ष की उम्र में ही हो जाना चाहिए।

बहू ने कुछ निकट आकर पूछा—अम्मा तुम्हारा ब्याह कब हुआ था ?

बुढ़िया ने खाँसते हुए कहा—हमारा ब्याह, हमारा ब्याह तो हमारी उम्र जब दस वर्ष की भी न थी, तभी होगया था।

घर से निकले हुए करुणा और दुर्गा को बहुत देर होगई थी इसीलिए राजरानी इन दोनों के सम्बन्ध में सोच-विचार रही थी। उसके मन में और भी अनेक बातें पैदा होरही थीं। दुर्गा सयानी हो गयी थी, अभी तक राजरानी उसका ब्याह न कर सकी थी। वह चाहती थी कि ऐसी जगह ब्याह करूँ जो घर धनवान हो लेकिन ऐसा घर पाने के लिए रुपये की ज़रूरत होती है।

रामऔतार दो साल से दुर्गा का विवाह करने के लिए छटपटा रहे थे। वे बहुत जगह घूमे भी थे। रामऔतार की रुपये-पैसे की हालत बहुत अच्छी न थी। वे दहेज़ में रुपये की लम्बी-लम्बी रक़में न दे सकते थे। ऐसी दशा में उनको धनवानों का घर कैसे मिल सकता था। अपनी शक्ति के अनुसार रामऔतार जहाँ दुर्गा के विवाह करने की बात सोचते, वहाँ विवाह करना राजरानी को मंजूर न होता। जो बात राजरानी को मंजूर न होती, वह कभी हो नहीं सकती।

देवीदास के कलकत्ते से चले आने और उनकी मृत्यु हो जाने के बाद राजरानी के हाथ खाली न रहे। देवीदास के पास कई हजार रुपये और बहुमूल्य सामान था। देवीदास के बाद राम-

औतार ही उस सबके अधिकारी थे। अपने मरने के समय देवीदास करुणा को रामऔतार के हाथों में सौंप गये थे और जो कुछ उनके पास था वह सब देकर कह गये थे कि इस रुपये से करुणा का किसी अच्छे स्थान पर विवाह कर देना। यह कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू आगए थे। राजरानी और रामऔतार ने उनको विश्वास दिलाया था कि तुम करुणा के सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिंता न करो। तुम्हारा जो कुछ है करुणा के लिए है और हम लोगों से जो कुछ हो सकेगा उसमें उठा न रक्खेंगे।

लेकिन अब बातें और थीं अब समय और था। देवीदास की रक़म को पाकर राजरानी का हिसाब-किताब कुछ और ही था। वह अनेक प्रकार के विचार करती थी। और उन्हीं में उलझी रहती थी। जब कभी कोई करुणा के विवाह की बात करता और पूछता, "भला करुणा के विवाह के लिए देवीदास कुछ छोड़-छाड़ गए हैं ?" तो राजरानी एक अजब तरह का मुँह बनाकर कहती--छोड़ जाने के लिए क्या कोई, जो कुछ अपने पास होता है, साथ थोड़े ही ले जाता है। आजकल का जैसा समय है, किसके पास रुपये रक्खे हैं। फिर जो देश-परदेश में रहता है, उसका पैसा तो इधर ही उधर में खर्च होता रहता है। एक तो कलकत्ते का ख़र्च और फिर देवीदास का ख़र्चीला स्वभाव। देवीदास ऐसी तनख्वाह ही कौन बहुत बड़ी पाते थे।

जब कभी कोई स्त्री कहती--तो फिर तुम्हारे सामने तो एक और मुश्किल खड़ी होगई। तुमको अभी दुर्गा का ब्याह करना ही था, एक दूसरी दुर्गा होगयी। आजकल का समय और फिर लड़कियों का ब्याह !

राजरानी कहती—हाँ, फिर वह तो करना ही पड़ेगा। दुर्गा को जो बदा होगा सो दुर्गा ले जायगी और जो करुणा को बदा होगा सो करुणा पा जायगी। दुर्गा के चाचा तो कहते थे कि हम करुणा का ब्याह बहुत अच्छी जगह करेंगे और बात है भी ऐसी ही। कारण यह है कि अगर देवीदास बने होते तो फिर वे चाहे जैसी जगह ब्याह कर जाते, कोई कुछ न कहता और अगर हमारे हाथों से ज़रा भी कुछ गड़बड़ होगा तो हज़ारों बातें सहने को मिलेंगी। लोग कहेंगे कि देवीदास का सब रुपया पैसा अपने घर में रख लिया और करुणा का अच्छी तरह ब्याह भी न किया। इसलिए देवीदास दे गये हों तो और न दे गये हों तो, करुणा का ब्याह मैं दुर्गा से अच्छा ही करूँगी।

इस प्रकार की बातें करके राजरानी सभी के मन से भली रहने की चेष्टा करने लगी।

———

सातवाँ परिच्छेद

अपनी अवस्था के चौदह वर्ष समाप्त करके करुणा ने पन्द्रहवें वर्ष में पदार्पण किया। उसके स्वस्थ और सुगठित शरीर में दिन-पर-दिन यौवन-श्री का प्रस्फुटन हो रहा था। वयःक्रम के साथ-साथ संसार का लावण्य उसके एक-एक अंग में प्रवेश कर रहा था।

करुणा सुन्दरी थी। उसका शरीर सुन्दर था, उसका मुख सुन्दर था। उसके हाथों में सौन्दर्य था--पैरों में सौन्दर्य था! वह सुन्दरता की मूर्ति थी; रूप की राशि थी! सुन्दरता की सर्वस्व थी!

उसके स्वभाव में कोमलता थी--हृदय में दया थी। उसके अंतरतम में प्यार था--आँखों में शील था! उसकी मनोवृत्तियों में प्रेम था! उसके जीवन में सादगी थी। सादगी ही उसका जीवन था। उसके हृदय में सद्भाव था, दुराभाव न था--उसके अन्तःकरण में मोह था, घृणा न थी! वह प्रेम करना जानती थी ...ड़ना न जानती थी! वह आदर करना जानती थी। अनादर ...ना न जानती थी।

करुणा के जीवन में और भी कुछ था, वह जितनी ही सुन्दर उतनी ही व्यवहार कुशल थी, उसके रूप में जितना सौन्दर्य उसके व्यवहार में उससे भी अधिक सौन्दर्य था। यही उसके ...न में विशेषता थी--यही विचित्रता थी। संसार में यह नहीं ... और यदि होता भी है तो बहुत कम; इतना कम कि जिसकी

न होने में ही गणना होती है। होता वह है कि जो सुन्दर होता है वह अव्यवहारिक होता है। जो जितना ही अधिक सुन्दर होता है, वह उतना ही अधिक अव्यवहारिक होता है! जिसका शरीर सुन्दर होता है, उसका हृदय सुन्दर नहीं होता और जिसका हृदय सुन्दर होता है उसका शरीर सुन्दर नहीं होता।

विश्व में दो प्रकार के सौन्दर्य हैं, शरीर-सौन्दर्य है और हृदय-सौन्दर्य! दोनों ही सौन्दर्य एक दूसरे के विरोधी हैं! दोनों में विभिन्नता है, इतनी विभिन्नता कि वे दोनों एक नहीं हो सकते—दोनों एक स्थल पर रह नहीं सकते। परन्तु करुणा के जीवन में दोनों ही का सामञ्जस्य था; दोनों ही का सम्मिश्रण था; इसीलिये करुणा सुन्दरी ही न थी, वह परम सुन्दरी थी! स्वयम् सौन्दर्य थी—सौन्दर्य की प्रतिमा थी!!

सृष्टि के निर्माण में प्रकृति ने अद्भुत वैचित्र्य से काम लिया है। जो जिस बात का अधिकारी है, वही उसमें हतभाग्य है, जो जिस वस्तु का अनधिकारी है, वही उसके सम्बन्ध में भाग्यशील है! जो उदार है, शीलवान है, वह निर्धन है--असमर्थ है। जो कृपण है, अनुदार है निःशील है; वह सम्पन्न है--समर्थ है!

इस वैचित्र्य का अर्थ क्या है, कुछ समझ में नहीं आता! प्रकृति जिसको सुन्दर बनाती है, उसके कपाल में फ़क़ीरी की रेखायें अंकित करती है! जिसको असुन्दर बनाती है, उसको भोग और विलास से अलंकृत करती है! यह कैसा रहस्य है--सृष्टि की यह कैसी उपयोगिता है!

करुणा की अवस्था में अब शैशव काल नहीं है। नवयौवन का प्रकाश उसके शरीर में जितना ही वृद्धि करता जाता है,

उतनी ही उसके जीवन में लज्जा और संकोच की मात्रा बढ़ती जाती है। स्कूल में अध्यापिकायें जब उससे बातें करती थीं और उसके रूप की प्रशंसा करती हुई अनेक प्रकार की बातें सुनाती थीं तो करुणा उन्हें उत्तर न देती थी।

साथ की पढ़नेवाली समवयस्का बालिकायें जब करुणा से अठखेलियाँ करती थीं, तो करुणा उनसे बचने और प्राण बचाने की चेष्टा करती थी। फिर एकान्त में जाकर उन बातों का अनुभव करती थी। प्रधान अध्यापिका ने बातें करते-करते एक दिन कहा था, करुणा तुम बड़ी सुन्दरी हो, तुमको देखने और बातें करने को जी चाहता है। यह सुनकर करुणा ने मुस्कराते हुये अपना मस्तक नीचे कर लिया था। प्रधान अध्यापिका ने फिर कहा था—'करुणा, तुम्हारा जिसके साथ विवाह होगा, वह बड़ा सौभाग्यशील होगा!' यह सुन कर करुणा ने अपने हाथों से अपने मुँह को छिपा लिया था।

समय और अवस्था सभी बातें, अपने आप सिखा लेती हैं। नान करने के उपरान्त करुणा भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों से प्रपने शरीर को अलंकृत करती है। अपना सुन्दर और विशाल ीशा सामने रखकर बालों को सँवारती है। उनमें कितने ही थानों में क्लिप लगाकर फिर शीशे में उनको देखती है।

एक दिन राजरानी किसी के घर गई थी। दुर्गा भी घर में थी। करुणा स्नान करके वस्त्रों से आभूषित होकर शीशा व रही थी, उसी समय उसको स्कूल की प्रधान अध्यापिका की तों का स्मरण आया। वह मुस्कुराने लगी और सोचने ी—क्या सचमुच मैं सुन्दरी हूँ!

करुणा जब कभी एकान्त में होती है तो अपने भविष्य का

कल्पना करती है। उस कल्पना में जिन बातों का उसके हृदय में आभास होता है, उनको वह मन-ही-मन अनुभव करके कल्पना के सुखसागर में विचरण करती है। अपने भविष्य-जीवन के प्रासाद की वह कल्पना करती है, फिर उसकी रचना करके उसकी विवेचना करती है। उस समय उसके मन की अवस्था बड़ी अद्भुत होती है।

इसी अवस्था में एक दिन करुणा अपने घर की छत पर बैठी हुई थी। उसी समय पीछे से आकर किसी ने अकस्मात् उसके नेत्रों को अपने दोनों हाथों से बन्द कर लिया। करुणा छटपटा कर छुटाने की चेष्टा करने लगी और बात की बात में कह उठी—

सुशीला, सुशीला मैं समझ गयी, तुम सुशीला हो।

सुशीला ने हाथ छोड़कर सामने आकर कहा—मैं तुमको न जाने कहाँ कहाँ ढूँढ़ आयी, लेकिन तुम मिली क्यों नहीं?

करुणा ने कहा--तुम कहाँ ढूंढ़ती रही, मैं तो बड़ी देर से यहाँ बैठी हूँ।

सुशीला ने आँखों को चढ़ाकर कहा--मुझे क्या मालूम था कि तुम यहाँ बैठी हो। तुम्हारे घर आयी, तुम न मिली तो दुर्गा से पूछा, उसने कहा कि हमको नहीं मालूम।

करुणा—तो तुमने चाची से पूछा होता।

सुशीला—हाँ, चाची से मैंने नहीं पूछा। अच्छा जाने दो। यह तो बताओ, यहाँ अकेले क्यों बैठी थीं?

करुणा ने हँसकर कहा—अकेले क्या यहाँ जङ्गल है?

सुशीला—जङ्गल तो नहीं है लेकिन फिर भी यहाँ छत पर कोई न कोई। अच्छा हाँ, मैं समझ गयी!

करुणा ने मुस्कराते हुए पूछा—क्या तुम समझ गयीं।

"न न, मैं बताऊँगी नहीं, लेकिन मैं समझ गयी।" सुशीला ने सिर हिलाते हुए कहा।

करुणा—फिर भी बताओ तो, क्या तुम जान गयीं। जब जान ही गयीं तो फिर बताने में क्या हानि है?

"क्या बताऊँ, जब तुमने अपनी ओर से कोई बात नहीं बताई, तो फिर मैं ही क्यों बताऊँ?" सुशीला ने उत्तर दिया।

करुणा—अच्छी बात है, जाने दो मत बताओ।

सुशीला—जब से तुम्हारे ब्याह की चर्चा होने लगी है, तब से तुम अकेले में बहुत बैठने लगी हो।

"नहीं, यह तो कोई बात नहीं।" कहकर करुणा ने इन्कार किया।

कुछ देर ठहरकर सुशीला ने कहा—ब्याह होजाने पर जब तुम अपनी ससुराल चली जाओगी, तब मैं तुमको कहाँ पाऊँगी?

करुणा ने हँसकर कहा—मैं तुमको छोड़कर कहीं जाऊँगी नहीं।

दोनों हँस पड़ीं। उसके बाद सुशीला ने कहा—यह भला कैसे हो सकता है।

करुणा—तो फिर और क्या हो सकता है, जो हो सकता हो, सो बताओ, वही मैं करूंगी।

सुशीला ने बात को बदलकर कहा—कल तुम्हारी चाची

हमारे घर गयी थीं तो बताती रही थीं कि दुर्गा के चाचा ब्याह ठीक करने गए हैं।

करुणा ने मुँह बनाकर कहा—उन्होंने दुर्गा के लिए कहा होगा।

"नहीं, तुम्हारे लिए भी कहा था, मैं समझती हूँ," जोर के साथ सुशीला ने कहा।

करुणा—यह ब्याह जाने क्यों होता है, मेरी इच्छा होती है कि जन्मभर स्कूल में पढ़ने को मिले और चाहे कुछ मिले या न मिले।

सुशीला—तो फिर पढ़ना क्यों छोड़ दिया ?

करुणा—चाची ने पढ़ाया ही नहीं। नहीं तो मैं पढ़ना न बन्द करती। जब मैंने एन्ट्रेन्स की परीक्षा दी थी तो हमारी टीचर ने हमसे कहा था—करुणा तुम पढ़ना न बन्द करना।

जिस समय करुणा और सुशीला छत पर यह बातें कर रही थीं, उसी समय राजरानी छत पर पहुँचकर कहने लगी—करुणा, आज कुछ खाना-पीना भी होगा या बातें ही होती रहेंगी ?

राजरानी की बात सुनकर, करुणा और सुशीला—दोनों नीचे उतर आयीं।

———

आठवाँ परिच्छेद

दोपहर के दो बज चुके थे। राजरानी अपने घर में चारपाई पर लेटी थी, उसी समय रामऔतार ने घर में प्रवेश किया। राजरानी चारपाई से उठकर रामऔतार के मुँह की ओर देखने लगी जैसे वह कुछ सुनना चाहती हो।

रामऔतार ने अपने साथ का सूटकेस रखकर हाथ में लिए हुए कपड़ों को एक खूँटी पर टाँगा और जूते उतारकर चारपाई पर बैठ गए। कुछ ठहरकर राजरानी की ओर देखकर उन्होंने कहा—लड़के तो हम दोनों के लिए देख आए हैं लेकिन उफ़, कितनी मुसीबत! कितना कष्ट! जिसे करना पड़ता है वही जानता है।

राजरानी पर इन बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। उसने अपने मन की बात पूछते हुए कहा—लड़के कहाँ देखे?

रामऔतार—घर से हमें निकले पन्द्रह-सोलह दिन होगए। इतने दिनों में हमने न जाने कहाँ-कहाँ जाकर कितने ही लड़के देख डाले; मगर हमको कहीं भी संतोष न हुआ। जहाँ लड़का अच्छा मिलता, वहाँ घर की दशा अच्छी न होती। जहाँ घर अच्छा मिलता, वहाँ लड़का अच्छा न होता। लेकिन फिर भी हमने दो लड़के पसन्द किए हैं। एक तो सुल्तांपुर में और दूसरा रायबरेली में।

रामऔतार इसके आगे और कुछ कहना ही चाहते थे, उसी समय राजरानी ने पूछा—लड़के कैसे हैं? उनके घरों की दशा कैसी है!

रामऔतार—लड़के देखने-सुनने में अच्छे हैं। अवस्था भी दोनों की ठीक है किन्तु सुल्तांपुर में जो लड़का देखा है, वह घर धनवान है। लड़के के पिता जिमीदार हैं। घर में सभी बातों का आराम है और रायबरेली में जो लड़का देखा है, उसके घर की दशा मामूली है।

रामऔतार की इस बात को सुनकर, राजरानी ने प्रसन्न होकर मन-ही-मन सोचा—सुल्तांपुर में मैं दुर्गा का विवाह करूँगी।

राजरानी—कहीं कुछ लेने-देने की बातचीत तो नहीं हुई?

रामऔतार—हाँ, खाली सुल्तांपुर में हुई थी। वे बड़े आदमी हैं। उनकी बातें भी लम्बी चौड़ी हैं, लेकिन हम सब ठीक-ठाक कर आए हैं।

यह कहकर रामऔतार स्नान करने चले गये। राजरानी इस समय बड़ी प्रसन्न थी। उसकी इच्छा थी कि मेरी दुर्गा किसी धनवान घर में जाय और ख़ूब सुख से रहे।

शाम को जब रामऔतार भोजन करने बैठे तो राजरानी ने कहा—अब देरी करना ठीक नहीं है। जब तुमको लड़के पसन्द आए हैं तो फिर उनको पक्का ही कर लेना चाहिये।

रामऔतार—हाँ, हम भी यही सोचते हैं।

राजरानी—देखो, किसी से अभी कुछ बे-मतलब की बातें न करने लगना। अगर कोई कुछ पूछे तो कहना, दोनों घर अच्छे हैं।

रामऔतार—हाँ, हाँ यह तो ठीक ही है।

उस दिन से राजरानी और रामऔतार में प्रायः नित्य ही बातें

हुआ करतीं। बातों-बातों में राजरानी ने रामऔतार को समझा दिया कि सुल्तांपुर में दुर्गा का और रायबरेली में करुणा का ब्याह किया जायगा। रामऔतार ने कुछ सोच-समझकर इसको मंजूर कर लिया।

रामऔतार को बाहर से लौटे हुये एक सप्ताह बीत गया। एक दिन वे अपने घर में चारपाई पर बैठे हुए राजरानी से बातें कर रहे थे। उसी समय पोस्टमैन ने आवाज़ देकर रामऔतार को एक लिफ़ाफ़ा दिया। रामऔतार ने लिफ़ाफ़े को खोलकर चिट्ठी निकाली। उसमें लिखा था--

श्रीमान् रामऔतार जी,

चिरञ्जीव मदनलाल के विवाह की आप बातचीत कर गए थे। हम आपको यह सूचित कर देना चाहते हैं कि आपके घर में जो छोटी लड़की है और जिसका करुणा नाम है, उसके साथ मदनलाल का विवाह कर सकते हैं। नहीं तो हमको विवाह करना मंजूर नहीं है।

भवदीय—

गोपालदास।

रामऔतार ने पत्र पढ़कर राजरानी को सुना दिया। पत्र सुनकर राजरानी का चेहरा कुछ फीका पड़ गया। उसके मुँह से कोई बात न निकली। मन ही मन वह अनेक प्रकार की बातें सोचने लगी।

रामऔतार के कुछ न बोलने पर राजरानी ने कहा--ऐसा क्यों हुआ?

रामऔतार--उनकी इच्छा। ऐसा जान पड़ता है मानों वहाँ के किसी आदमी ने यहाँ आकर लड़कियों को देखा है।

राजरानी ने झुँझलाकर कहा—तो फिर इससे क्या? क्या दुर्गा कुछ खराब है या किसी बात में वह कुछ किसी से कम है?

रामऔतार--यह तो तुम जानती हो, लेकिन जिनको विवाह करना है, तुम उनका मन तो नहीं हो सकतीं। वे जो कुछ सोचते हैं वही उनके लिए ठीक है।

राजरानी ने कुछ भी जवाब न दिया। वह अन्यमनस्क भाव से कुछ सोचने लगी। रामऔतार ने कहा—फिर अब?

राजरानी—फिर अब क्या?

रामऔतार—यही कि अब क्या होगा। तुम्हारा विचार था उस लड़के का, दुर्गा के साथ विवाह करने का; लेकिन अब तो करुणा का ही करना पड़ेगा।

अच्छा तो फिर क्या हुआ। जो कुछ करना होगा, देखा जायगा। कल तुम एक चिट्ठी छोड़ दो। कहकर राजरानी आई हुई चिट्ठी को उलटने-पलटने लगी। रामऔतार ने पूछा—तो फिर उनको क्या लिखा जायगा?

राजरानी—उनको और क्या लिखा जायगा, उनको यही लिखा जायगा कि जैसी आपकी इच्छा हो। हम किसी बात में आप से बाहर नहीं हो सकते।

इसके बाद रामऔतार बड़ी देर तक राजरानी से बातें करते रहे और दूसरे दिन उन्होंने सुल्तांपुर से आई हुई चिट्ठी का उत्तर दे दिया।

रामऔतार विवाह की तैयारियाँ करने लगे। विवाह की तिथियाँ निश्चित होगयीं। उनका घर रात-दिन स्त्रियों और आदमियों से भरा रहने लगा। राजरानी बड़े उत्साह के साथ सभी कामों का प्रबन्ध करने लगी।

समय आया और दोनों स्थानों से बारातें आयीं। विवाह-संस्कार समाप्त होगए। विवाह के शेष दिनों के प्रचलित नियमों को पूरा किया गया। राजरानी और रामऔतार जो कुछ कर सकते थे, देने में, लेने में कुछ उठा न रक्खा। काश्मीरी मुहाल के घर-घर में रामऔतार और राजरानी की बातें होतीं। विवाह होजाने पर दोनों लड़कियाँ बिदा होकर अपने-अपने ससुराल चली गयीं।

कुछ दिन और बीत गए। रामऔतार दोनों लड़कियों का विवाह करके एक बहुत बड़े बोझ से छुटकारा पागए। बहुत दिनों से उनके सिर पर बोझा रक्खा था और जिसके मारे वे रात दिन चिंता को अनुभव करते थे, वह बोझ उतर गया; उसकी चिंता दूर होगयी। राजरानी घर के काम-काज से छुट्टी पा[illegible] दूसरों के घरों में जाती और तरह-तरह की बातें करती,[illegible] ही स्त्रियाँ राजरानी की प्रशंसा करतीं। कहतीं, यह इन्हीं का [illegible] था जो ऐसे समय में, दो-दो लड़कियों के ब्याह इतने [illegible] ढँग से किये।

राजरानी कहती—सब तुम लोगों के प्रताप से; लेकिन [illegible] घर में लड़की का ब्याह करना बड़ा कठिन होता है। दुग[illegible] चाचा का छः महीने घर में पैर नहीं रहा। सैकड़ों रुपये तो ख[illegible] दौड़-धूप में खर्च होगये।

स्त्रियाँ कहतीं—फिर घर भी अच्छे मिल गए।

राजरानी—घर, घर तो फिर जिसने देखे हैं वही जानता है कैसे हैं। दूसरा कोई होता तो क्या करता !

एक दिन किसी घर से राजरानी के चले आने पर स्त्रियाँ बातें करने लगीं—दुर्गा का घर तो अच्छा है, बरात भी उसकी बहुत अच्छी थी। लेकिन करुणा का घर तो ग़रीब जान पड़ता है।

दूसरी स्त्री—यह तो हमें तभी मालूम होगया था, जब उसकी बरात को देखा था। जिसके सुभीता होगा सो क्या कुछ उठा रखेगा। लड़का-लड़की का विवाह क्या बार-बार होता है !

तीसरी स्त्री—यह तो ठीक ही है।

उसी समय कोई कह उठी—ग़रीब-अमीर तो हमें नहीं मालम, लेकिन करुणा का जिसके साथ ब्याह हुआ है, लड़का बड़ा अच्छा है। तुमने देखा था न बहन।

कई स्त्रियाँ बोल उठीं—लड़का तो भाई अच्छा था। बहुत ही सुन्दर था। और दुर्गा का आदमी.........उँहूँ, कुछ हमें जँचा नहीं।

"अरे हाँ, वह तो कुछ साँवले रंग का था।"

"साँवले रंग का ! काला और मुँह में देबिन के दाग़ ! देखने में जाने कैसा लगता था।"

"तो फिर दुर्गा ही कौन बड़ी अच्छी है ?"

सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं। कुछ देर चुप रहने के बाद एक स्त्री ने कहा—लेकिन राजरानी तो दुर्गा की बहुत तारीफ़ करती हैं।

इसी प्रकार बड़ी देर तक बातें होती रहीं।

राजरानी अपने घर में अलगनो से कपड़ों को सम्हाल-सम्हाल

कर रखती जाती थी और कहती जाती थी--इनका यह स्वभाव न गया। जहाँ पाया, वहीं वह चीज़ डाल दी। ये कपड़े अभी कल ही धोकर आए हैं, आज सबेरे से ज़मीन पर पड़े हैं।

उसी समय दरवाज़े पर डाकिए ने पुकारा—रामऔतार, रामऔतार।

राजरानी झपट कर बाहर आयी और किवाड़ों के पास ठिठक गयी। डाकिये ने एक लिफ़ाफ़ा दिया और वह चला गया। वह बार-बार उसको नीचे-ऊपर देखती और सोचती, यह किसकी चिट्ठी है। उसको कुछ ऐसा जान पड़ने लगा कि यह लिफ़ाफ़ा सुल्तांपुर से आया है। वह स्वयम् पढ़ी-लिखी न थी। अनेक प्रकार के सोच-विचार में पड़कर उसने वह चिट्ठी किसी से पढ़ाई भी नहीं।

सन्ध्या के समय जब रामऔतार घर आये तो राजरानी ने वह लिफ़ाफ़ा लाकर रामऔतार के हाथों में दिया। उन्होंने झट उसको खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

श्रीयुत रामऔतार,

आपने हमारे साथ जो बेईमानी की है, उसका फल क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता। आपने ऐसा क्यों किया, यह भी हमारी समझ में नहीं आया, लेकिन आपने हमारे साथ बहुत बड़ा विश्वासघात किया है। हमने आपको लिखा था कि छोटी लड़की के साथ ब्याह करेंगे और आपने यह मंज़ूर किया भी था; फिर हमारे साथ क्यों विश्वासघात किया ? जिस दिन से ब्याह करके हम लौटे हैं और आपकी लड़की हमारे घर आई है। उसी दिन से हमारे घर की क्या दशा है, इसको आप क्या सोच सकते हैं। कृपा करके आप एक-दो दिन के लिए हो जावें।

राजरानी ने चिट्ठी सुनी, वह भौचक्की-सी रह गयी। रामऔतार राजरानी की ओर देखने लगे। उनके हृदय में डर और भय का संचार हो रहा था। राजरानी ने पूछा—यह चिट्ठी किसने लिखी है?

रामऔतार ने कुछ भी उत्तर न दिया, मानों उनके हृदय में क्रोध और घृणा का प्रवाह उमड़ रहा था। उनके नेत्र अस्थिर हो रहे थे। कुछ सोच-विचार कर वे बोले--अब क्या होगा, तुम्हारी बात मानने का यह फल हुआ!

राजरानी के हृदय की अवस्था अद्भुत हो रही थी। उसने कुछ भी उत्तर न दिया। अपने आँचल का एक किनारा हाथ में लेकर वह उसको अपने नाखून से खरोच रही थी। रामऔतार ने कहा--

तुमको क्या, चार आदमियों में मुँह तो हमको दिखाना होगा। वहाँ जाकर बात-कुबात तो हमको सहनी होगी। तुमको कौन जानेगा, तुमको कौन पूछेगा। अब बताओ, हम क्या करें।

राजरानी ने सोच-विचार कर कहा—यह कहना कि जब पण्डितों से पूछा गया तो उस लड़की के साथ बनता न था। इसलिए उसके साथ कैसे करते।

रामऔतार का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने कहा—अब मैं तुम्हारी बातों में पड़कर मूर्ख नहीं बनूँगा। जब उस लड़की के साथ ब्याह न बनता था तो हमको यह बात सूचित करनी चाहिये थी। हमको अब लोग क्या कहेंगे।

रामऔतार का हृदय क्रोध से जल रहा था। शाम को खाना भी नहीं खाया। रात को राजरानी के साथ बड़ी देर तक बातें

करते रहे। दूसरे दिन उन्होंने सुल्तांपुर जाने की तैयारी की और शाम को वे वहाँ के लिये रवाना होगए।

राजरानी का जी अब किसी काम में न लगता था। अनेक प्रकार की बातें उसके मन में आकर उथल-पुथल मचा रही थीं। किसी प्रकार दिन समाप्त हुआ। रात को जब वह खा-पीकर लेटी तो अपनी इस लीला पर वह देवी-देवताओं से प्रार्थना करने लगी। अनेक प्रकार की मिन्नतें मानकर वह कुशल-क्षेम की आशा करने लगी। रात को कई बार सोते से जाग कर वह आशंका से घबराने लगी। कुछ देर बाद वह फिर सो गयी।

चौथे दिन रामऔतार लौटकर घर आगए। दुर्गा उनके साथ थी। उसके शरीर में वे आभूषण न थे, जिनको उसने ब्याह में पाया था। दुर्गा के ससुर ने उसको एक साधारण धोती पहना कर रामऔतार के साथ भेज दिया था।

नवाँ परिच्छेद

मनुष्य सोचता कुछ है, होता कुछ है। वह चाहता कुछ है, मिलता कुछ है। यही जीवन है, यही संसार है।

करुणा ने जब कलकत्ता छोड़ा था तब उसने उस प्रकार के मकानों की कभी कोई बात भी न सोची थी, जिस प्रकार के मकान में आकर लखनऊ में उसको रहना पड़ा। कलकत्ते में जिन बंगाली बाबू के मकान में वह रहती थी, वह उस नगरी का एक विशाल भवन था। उस विशाल प्रासाद में सर्वत्र खेलने और

विचरने का करुणा को अधिकार था। परन्तु कुछ ही समय के उपरान्त रामऔतार के उस साधारण घर में आकर उसको रहना पड़ा, जिस प्रकार के घरों की ओर वह कलकत्ते में आँख उठाकर देखती न थी।

लखनऊ आकर जितनी ही वह आयुष्मती होती गयी, उतनी ही वह अपने जीवन की नई-नई कल्पनाएँ करने लगी। अपनी जिन कल्पनाओं के सम्बन्ध में, उसके हृदय में कुतूहल उठता था, उनको कभी वह चर्चा न करती थी। कभी किसी से कुछ कहती न थी, परन्तु वह क्या-क्या सोचती थी, इसको उसके सिवा और कोई न जानता था।

रायबरेली के जिस घर में उसका विवाह हुआ था, उस घर में, उसका पति लोकनाथ, जेठ ओंकारनाथ के अतिरिक्त और उसकी जिठानी और जिठानी के लड़के-बच्चे भी थे। उनका घर अपना घर था, परन्तु छोटा-सा कच्चा और खपरैल का था। जिस दिन उसने उस मकान में प्रवेश किया, कदाचित् उसी दिन उसको इस बात का ज्ञान हुआ होगा कि ऐसे मकानों में भी मनुष्य रहा करते हैं।

करुणा की जिठानी ने करुणा को पाकर और उसको देख सुनकर उसका बहुत आदर किया। ओंकारनाथ ने भी जो व्यवहार किया, उसमें भी सद्भाव था। एक-एक दिन करके अनेक दिन उस मकान में करुणा के बीत गए और धीरे-धीरे तीन महीने पूरे समाप्त होगए। अब उस मकान में उसको उतनी उलझन न मालूम होती थी, जितनी उसने पहले-पहल आकर अनुभव की थी। अब उसी मकान में वह अपने सुभीते की बातें सोचा करती थी। अपने चातुर्य से उसके अनेक स्थानों को परिष्कृत बनाने की

चेष्टा करती थी। घर के सभी लोगों से आत्मीयता का भाव अनुभव करने लगी थी।

उस मकान में छत पर एक बड़ा-सा कोठा था। वह भी खपरैल का था। उसकी पतली और कच्ची दीवारें भी सुडौल न बनी थीं। वही कोठा लोकनाथ के बैठने-उठने और लेटने का स्थान था। उस कोठे में एक चारपाई के सिवा बेंत की एक आलमारी भी थी। उसमें हिन्दी और अंग्रेज़ी की कितनी ही पुस्तकें रक्खी हुई थीं। करुणा जब ऊपर जाती थी तो उन किताबों को उठा-उठा कर देखती थी। उनमें से कई किताबें ऐसी निकलीं जिनको पढ़ने का उसका जी चाहा। वह मन-ही-मन सोचने लगी, इन पर इतनी धूल पड़ी हुई है, मालूम होता है, कभी साफ़ नहीं की जाती, कभी उठाकर देखी भी नहीं जातीं।

करुणा ने उस कोठे की खूब सफ़ाई की। खपरैल की छत और दीवारों पर लगे हुए जाले साफ़ करके, ज़मीन पर झाड़ू दी; गोबर मँगाकर उसने उसको लीप-पोतकर सुन्दर बना दिया। उसके बाद, आलमारी की किताबों को निकालकर पहले अलमारी को झाड़ा और फिर पुस्तकों को झाड़-झाड़ कर और पोंछ-पोंछ कर अलमारी में लगा दिया। करुणा ने मकान के कई हिस्सों को स्वयम् साफ़ करने की जो चेष्टा की थी, उससे ओंकारनाथ और उनकी स्त्री ने करुणा की बड़ी प्रशंसा की थी। करुणा ने जिस दिन ऊपर के कमरे की सफ़ाई की, उस दिन लोकनाथ कहीं बाहर गया था। जब वह घर आया और अपने कोठे पर गया तो उसने कुछ और भी दृश्य देखा। नीचे से ऊपर तक बार-बार कोठे को देखकर वह मन-ही-मन मुस्कराने लगा। करुणा के प्रति उसके हृदय में जो आदर और स्नेह था, उसने प्यार का रूप धारण किया। उसका

प्रफुल्लित हृदय करुणा को देखने और बात करने के लिए उत्सुकता अनुभव करने लगा।

जब से करुणा ससुराल आयी है, प्रायः वही भोजन बनाया करती है। लोकनाथ कपड़े उतार कर जब नीचे जाने लगा तो वह सोचने लगा, 'करुणा खाना बना रही होगी। कुछ कहता, परन्तु घर में भौजाई होंगी।' लोकनाथ जब नीचे पहुँचा तो देखा करुणा रसोई घर में नहीं है। भौजाई को खाना बनाते देखकर लोकनाथ ने कहा—भौजाई, आज तुम खाना बना रही हो ?

भावज ने मुस्कराकर कहा—क्यों, क्या मेरे हाथ का अच्छा न लगेगा ?

'नहीं, यह मेरा मतलब नहीं है।' कहकर लोकनाथ ने कुछ दूर पर खड़ी हुई करुणा की ओर देखा। करुणा के कान रसोई घर की ओर और आँखें लोकनाथ की ओर थीं। लोकनाथ के देखते ही करुणा मुस्कराकर नीचे अपने पैरों की ओर देखने लगी।

खाना परोसकर लोकनाथ की ओर थाली बढ़ाते हुए भावज ने कहा—मैं एक देहात की लड़की हूँ, देहाती बातें जानती हूँ, शहर और देहात में बड़ा अन्तर होता है।

खाना खाते हुए लोकनाथ ने कहा—नहीं, मैं तो ऐसा नहीं समझता। तुम ऐसी बातें मुझे क्यों सुना रही हो ?

खाना खाकर लोकनाथ ऊपर चला गया और चारपाई पर लेटकर एक पुस्तक पढ़ने लगा। घर में खाना-पीना समाप्त करके, करुणा की जिठानी कौशिल्या किसी के घर जाने लगी। उसके दो लड़कियाँ और एक लड़का है। जाते समय उसने लड़कियों को

घर ही में छोड़ना चाहा परन्तु वे न रुकीं और कौशिल्या के साथ ही साथ चली गयीं।

खाली घर में करुणा थोड़ी देर बैठी और उसके बाद छत पर जाकर कोठे के पास एक ओर ठिठक गयी। फिर आगे बढ़कर कमरे में जाकर अलमारी की किताबों को देखने लगी।

लोकनाथ ने पढ़ना बन्द कर दिया और करुणा की ओर देखकर कहा—घर से छुट्टी मिल गयी, भौजाई साहब क्या कहीं गयी हैं ?

करुणा ने किताबों को उलटते हुए उत्तर दिया—हाँ, किसी के घर गयी हैं !

लोकनाथ—तो जो दो-चार मिनट मिले हैं, वे क्या पुस्तकों के नाम लिखे जायँगे !

'हाँ, यदि उनका कोई उपयोग नहीं हो सकता तो........।' कहकर, करुणा ने लोकनाथ की ओर देखा। उसके ओठों में मुस्कान थी। उसके बड़े-बड़े नेत्रों में प्यार और आदर भरा था।

लोकनाथ के मुँह पर एक गम्भीर दृष्टि डालकर करुणा फिर किताबों की ओर देखने लगी। लोकनाथ उठकर चारपाई पर बैठ गया और उसने कहा, मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ।

करुणा—क्या ?

लोकनाथ—इधर देखो।

करुणा—उधर ही तो देखती हूँ।

लोकनाथ—लेकिन हमें तो नहीं दिखाई पड़ता।

करुणा—इसमें मेरा क्या दोष है ?

लोकनाथ—हम कुछ समझे नहीं।

करुणा—यही तो मैं भी कहती हूँ।

लोकनाथ—क्या ?

करुणा—कि मैं कुछ समझी नहीं।

लोकनाथ को कुछ उत्तर न सूझा। चारपाई से एक पैर नीचे रख कर उसने करुणा का हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींच लिया।

करुणा ने चारपाई पर बैठकर पूछा—क्या पूछना चाहते हैं ?

लोकनाथ—हमारी ओर देखो।

'देखती तो हूँ।' कहकर करुणा ने एक बार लोकनाथ की ओर देखा और फिर नीचे देखने लगी।

लोकनाथ—ऐसे नहीं।

करुणा—तो फिर कैसे ?

लोकनाथ—जिस तरह हम कहते हैं।

'उस तरह मुझसे नहीं होता।' कहकर करुणा अपनी मधुर मुस्कान रोकने की चेष्टा करने लगी। लोकनाथ ने उसके सुन्दर मुख और विशाल नेत्रों की ओर क्षण भर तक देखकर कहा—नहीं बनता ?

करुणा—जैसे तुम कहते हो।

लोकनाथ—किस तरह हम कहते हैं ?

'यह मुझे नहीं मालूम।' कहकर करुणा अपने हृदय की चञ्चलता को अनुभव करने लगी।

लोकनाथ ने तत्परता के साथ पूछा—यह तुम्हें नहीं मालूम ?

करुणा—जी नहीं।

लोकनाथ—तो फिर और क्या मालूम है ?

'यह भी नहीं मालूम।' कहकर करुणा ने अपने चञ्चल नेत्रों से लोकनाथ की ओर देखा और पूछा—हाँ, तो क्या पूछना है ?

लोकनाथ—जो सामने देख नहीं सकता, उससे कैसे पूछा जाय ?

यह सुनकर वह अपनी हँसी रोक न सकी और जोर से हँसकर कहने लगी—सामने देखने और सुनने से क्या सम्बन्ध ?

कान सुनेंगे और मुँह उत्तर देगा। फिर सामने देखने का क्या अर्थ ?

लोकनाथ भी हँसने लगा। कुछ देर तक स्तब्ध रहकर उसने कहा—बड़ी देर से लेटे रहकर हम तुम्हारा रास्ता देख रहे थे। लेकिन तुम, तुम क्यों......।

करुणा ने सिर उठाकर सामने देखा और गम्भीरतापूर्वक कहा—हाँ, हाँ और आगे कहिए। रुक क्यों गये। आप अपना घर जानते हैं—भावज साहब किस विचार की हैं। यदि मैं ऐसा करूँ तो कल ही मुझ पर जल-भुनकर राख हो जाँय।

लोकनाथ—तो फिर उनकी प्रसन्नता की रक्षा कहाँ तक की जा सकेगी ? क्या उन्होंने तुम्हें कभी कुछ कहा है ?

करुणा—नहीं, उन्होंने मुझे कभी कोई ऐसी बात नहीं कही। और मैं चाहती हूँ कि उनको कभी मुझे कुछ कहना न पड़े।

लोकनाथ—परन्तु यह कितने दिन चल सकेगा ?

'यह सोचने की आवश्यकता क्या है।' कहते हुए करुणा ने अपने कोमल हाथों में लोकनाथ का एक हाथ रख लिया।

लोकनाथ ने कुछ उत्तर न दिया। उसके मुख पर गम्भीरता आ गयी थी। उसके उद्दीप्त नेत्र बाहर की ओर देख रहे थे। करुणा ने लोकनाथ की अवस्था को अनुभव किया और कुछ अधिक निकट आकर सामने देखते हुए विनम्रता-पूर्वक कहा—क्या अप्रसन्न हो गए!

लोकनाथ ने अपने भावों को परिवर्त्तित करके और करुणा की ओर देखकर कहा—नहीं तो।

करुणा—तो फिर उधर क्यों देखने लगे थे?

लोकनाथ ने मुस्कराते हुए कहा—और जब तुम उधर देखने लगती हो, तब।

करुणा ने लोकनाथ की बात का उत्तर न देकर कहा—मैं बातें बहुत करने लगी हूँ, इसीलिये मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मुझसे कोई अपराध हो गया हो।

लोकनाथ—तुमसे अपराध नहीं हो सकता। तुम ऐसी बात कभी न सोचा करो। तुम्हारे ऐसा सोचने से हमको कष्ट होगा।

'हमको कष्ट होगा' सुनते ही करुणा चौंक-सी पड़ी। उसने लोकनाथ की ओर देखा। लोकनाथ भी अपने नेत्रों को फाड़-फाड़ कर बिना दृष्टि निक्षेप किए उसकी ओर देख रहा था। करुणा को ऐसा जान पड़ा, मानों मैं इस प्यार और आदर की अगाध वारि-राशि में डूबी जा रही हूँ। उसने अपना दाहिना हाथ लोकनाथ के कन्धे पर रख दिया और अपना मस्तक

लोकनाथ के वक्षस्थल पर ! लोकनाथ ने उसके सुकुमार शरीर का स्पर्श करते हुए गद्गद् कंठ से कहा—करुणा !

करुणा ने नेत्रों को ऊपर उठा कर लोकनाथ की ओर देखा। लोकनाथ की दृष्टि जैसे ही करुणा के मुख पर पड़ी, उसने देखा, उसके नेत्रों से कई एक आँसू निकल कर उसके वक्षस्थल पर गिर पड़े। लोकनाथ का हृदय अस्थिर हो उठा। उसने उसका दूसरा हाथ अपने हाथ में लेकर अतिशय प्यार के साथ पूछा--करुणा, क्यों, तुम्हारे नेत्रों में आँसू क्यों आ गये ?

करुणा ने कुछ उत्तर न दिया। उसने अपने अञ्चल से आँखों के आँसू पोंछे और अपना मस्तक लोकनाथ की छाती पर रखकर शान्त हो रही।

लोकनाथ ने अधीरता-पूर्वक फिर पूछा—करुणा, तुमने बताया नहीं ?

करुणा—नहीं, कोई बात नहीं।

लोकनाथ—फिर भी बताओ क्या बात है ?

करुणा ने दीर्घ निःश्वास खींची और चुप हो रही। उसने कुछ उत्तर न दिया !

लोकनाथ—क्या मैं इस योग्य नहीं हूँ कि तुम मुझसे कुछ कह सको ?

करुणा ने फिर ठंढी सांस लेकर कहा—नहीं, ऐसी बात नहीं है।

लोकनाथ—फिर क्या बात है ?

'एक दरिद्र जब बहुत-सा धन पा जाता है तो वह उसको

सम्हालने में असमर्थ होता है। मैं भी दरिद्र हूँ, मैंने प्यार बहुत कम पाया है। जब छोटी थी तब माँ का प्यार न पा सकी, जब बड़ी हुई, तब पिता के प्यार की भी अधिकारी न रही। मैं प्यार के योग्य नहीं हूँ—मैं प्यार की वस्तु नहीं हूँ! तुम मेरा प्यार न करो। कहकर करुणा ने अपना आञ्चल अपने नेत्रों पर रख लिया।

लोकनाथ का हृदय उत्पीड़ित हो उठा। उसने अपना मस्तक ...काकर अपनी उँगलियों से करुणा के कोमल ओठों का स्पर्श ...कया और आँखों से हाथों को हटाकर कहा—तुम किस योग्य ...ो, यह मेरा हृदय जानता है। तुम ऐसी बातें करके दुखी न होओ। तुम संसार की उन वस्तुओं में से हो, जिसको पाने का मैं अधिकारी न था। परन्तु ईश्वर ने हमारे किन्हीं पूर्व सत्कर्मों के उपलक्ष में तुमको हमें प्रदान किया है इसलिए मेरे सामने एक ...ड़े संशय की बात उपस्थित हो गयी है।

करुणा ने अस्थिर होकर बैठते हुए पूछा—कैसा संशय?

लोकनाथ ने अपनी बात को फिर दुहराया—मुझसे कहने में ...ल हो गयी। संशय उत्पन्न हो गया है नहीं, संशय उत्पन्न हो ...या था?

करुणा—क्या?

लोकनाथ—यही, तुम्हारी प्रशंसा में न जाने क्या-क्या बातें ...ने को मिला करती थीं। मैं सोचता था, मैं ग़रीब का लड़का ...। मैं इस योग्य नहीं हूँ। मेरा घर भी इस योग्य नहीं है। फिर ... देखकर ईश्वर इस प्रकार का संयोग उपस्थित कर रहा है!

लोकनाथ चुप हो गया। कुछ ठहर कर करुणा ने कहा—...वर जो संयोग उपस्थित करता है, उसमें अन्याय नहीं होता,

सुयोग होता है। जब ब्याह हो रहा था और बारात गयी थी, त॰ टोला-पड़ोस की स्त्रियाँ तरह-तरह की बातें कहती थीं। कोई कहता था कि करुणा का घर बहुत ग़रीब है। कोई कहता था, रामऔतार ने करुणा का ब्याह अच्छे घर में नहीं किया। मैं इन बातों को सुना करती थी। कुछ कहती न थी; परन्तु न जाने क्या क्या मेरे दिल में बातें उठा करती थीं। उन बातों से कभी-कभी मेरे हृदय को बहुत दुख होता था। परन्तु वहाँ मैंने जिन बातों को सुना था; उनमें से मैंने कुछ और भी सुना था। उससे मेरे दुर्बल हृदय में जिस प्रकाश की क्षीण किरण का प्रस्फुटन हुआ था, उस प्रकाश की विकसित अवस्था में मैं आज हूँ। आज मुझे......

करुणा की बात अभी पूरी न हो पायी थी कि लोकनाथ ने पूछा—और क्या सुना था ?

लोकनाथ की बात सुन कर करुणा ने एक बार अपने गम्भी॰ नेत्रों से लोकनाथ की ओर देखा और कहा—आज मुझे अ॰ जीवन में...... ।

लोकनाथ ने बात काटकर फिर पूछा—पहले हमें बता द॰ और भी क्या सुना था।

करुणा ने फिर लोकनाथ की ओर देखा। उसकी आँखों॰ प्यार था, स्नेह था और उसकी दृष्टि में अद्‌भुत मादकता थी। उ॰ कहा—और भी कुछ सुना था और वही सुना था, जो आ॰ आँखों से देखती हूँ।

लोकनाथ ने आतुरता के साथ कहा—तुम्हारी यह कवि॰ मेरी समझ में नहीं आती। तुम्हारी इन बातों का अर्थ सूरदास के पदों से भी कठिन है।

करुणा हँसने लगी। लोकनाथ भी हँस पड़ा। कुछ ठहर कर करुणा ने फिर कहा—जो लोग घर और धन की निन्दा करते थे; े अनेक बार तुम्हारी प्रशंसा करते थे। कहते थे, लड़का बहुत ुन्दर है। जिस समय मैं यह सुन लेती थी, उस समय मेरे हृदय ी क्या दशा होती थी; इसको मैं बता नहीं सकती।

लोकनाथ ने हँसकर कहा—लोगों ने तुम्हारे संतोष के लिए ई कह रखा होगा।

करुणा—और उसी संतोष के लिए, जिसको पाकर मैं परम सौभाग्यवती बन सकती थी!

लोकनाथ—क्या सचमुच तुमको करुणा, यहाँ आकर कुछ तोष मिला है?

करुणा—यह बात बताई नहीं जा सकती। मैं कैसे कहूँ, अक्सर मैं सोचा करती हूँ कि ईश्वर ने मेरे जीवन की अत्यन्त य वस्तु मुझे प्रदान की है।

लोकनाथ ने उत्सुकता पूर्वक पूछा—तुम्हारे जीवन की अत्यन्त य वस्तु क्या है?

करुणा ने गम्भीर नेत्रों से लोकनाथ की ओर देखा। अपने ीप्त नेत्रों से कटाक्षपात करती हुई करुणा ने कहा—मेरे वन की?

लोकनाथ—हाँ, तुम्हारे जीवन की!

करुणा—तुम्हारी छवि, तुम्हारा सौन्दर्य।

लोकनाथ ने अपने नीचे के ओठ को अगले दाँतों से दबाये करुणा की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखा। उसके हृदय की

अवस्था अद्‌भुत हो गयी। धमनियों का रक्त उत्तप्त हो उठा। हृदय की गति तीव्र हो गयी। कुछ क्षणों तक अन्यमनस्क रहकर लोकनाथ ने कहा—और करुणा, हमारे घर की दशा देखकर तुम क्या कहती होगी ?

करुणा ने पुलकित होकर कहा—हिन्दू नारी धन नहीं चाहती, राज्य नहीं चाहती, संसार का ऐश्वर्य नहीं चाहती। उसके जीवन का सर्वस्व, उसके प्राणों का प्राण उसका पति होता है।

युवक हृदय लोकनाथ ने उसका दाहिना हाथ लेकर अपने वक्षस्थल पर रख लिया और उसकी जंघा पर वह लेट गया। उसने एक बार ठंढी साँस लेकर कहा—करुणा, आज मैं कहाँ हूँ ?

करुणा—दासी की गोद में !

लोकनाथ—दासी की नहीं, प्रियतमा की--प्राणाधिके की। दासी कैसी, जीवन की सर्वस्व, प्राणों की प्राण !!

करुणा ने अपने नेत्रों को अवरुद्ध करके कहा—भगवान् अभागिनी के इस भाग्य की रक्षा करना !

उसी समय, करुणा का ध्यान मकान के नीचे की ओर आकर्षित हुआ। उसने कहा—जान पड़ता है, जीजी आ गयीं। अब मैं जाती हूँ।

लोकनाथ ने धीरे-से मुस्करा दिया। करुणा भी मुस्कराती हुई चली गयी।

दसवाँ परिच्छेद

'लेकिन अब बैठे काम न चलेगा। काम करने के लायक हैं। जवान हैं, बच्चे नहीं हैं, आज कल के समय में किसी का बैठे काम नहीं चलता।' कह कर कौशिल्या चुप हो गई।

ओंकारनाथ—यह तो सब ठीक है लेकिन उनको क्या, खाने को उनको मिलता ही जाता है, कपड़े भी पहनने को मिलते ही हैं; फिर उनको काम की क्या चिन्ता!

कौशिल्या ने नाक सिकोड़ कर कहा—आज उनसे तुम साफ़-साफ कहो कि बिना नौकरी-चाकरी किये अब काम नहीं चल सकता। हमारे घर में रुपये के पेड़ नहीं लगे। एक आदमी मर-खप कर कहाँ तक काम चलावेगा। आज लोकनाथ से तुम यह बात साफ़ कहो और जो तुम न कहो तो फिर मैं कहूँ।

ओंकारनाथ ने कुछ भी उत्तर न दिया। वे अपना एक हाथ बायें गाल पर रखे हुए, बैठे थे और सोच रहे थे। कुछ देर ठहर कर कौशिल्या ने फिर कहा—जब से उनका ब्याह कर दिया गया है और उनकी बीबी साहब घर में आयी हैं; तब से तो वे और भी घर नहीं छोड़ते। घर में बैठे ही बैठे खाने को कहीं से आ जाया करेगा। कुछ करना थोड़े ही पड़ेगा।

कौशिल्या और ओंकारनाथ घर में जहाँ ये बातें कर रहे थे; वहीं उनसे थोड़ी दूर पर करुणा बैठी हुई इन बातों को सुन रही थी। कौशिल्या जो कुछ कहती थी, उसकी एक-एक बात से लाज और सङ्कोच के मारे वह पत्थर की मूर्त्ति बन गयी थी।

कौशिल्या की बात सुन कर; ओंकारनाथ ने कहा—पढ़ना-लिखना छोड़े हुए आज उनको पाँच वर्ष हो गये। उनका ब्याह हुए भी धीरे-धीरे डेढ़ वर्ष हो रहा है। घर की क्या दशा है, क्या उनको यह कभी न देखना चाहिए। इक्कीस-बाईस वर्ष की अवस्था हुई, फिर क्या वे बुढ़ापे में कुछ काम करेंगे। अपनी तरफ़ से कभी कोई बात न कहेंगे, जो कुछ हम कह देंगे। बस उतना पूरा कर देंगे। काम हो तो और न हो तो, उनके लिए, दोनों बराबर हैं।

कौशिल्या—नौकरी करना आसान नहीं है। जब कभी कोई बात कही जाती है तो आँखें चढ़ जाती हैं। घर का जब कुछ काम होता है तो कहने पर उनको पहाड़ ही मालूम होता है। जब उनकी यह हालत है तो फिर वे दूसरे का काम कैसे करेंगे?

ओंकारनाथ—यही तो हमें बड़ा कठिन दिखाई पड़ता है।

कौशिल्या ने तत्परता के साथ पूछा—अभी परसों जो उनको कहीं भेजा था, उसमें क्या हुआ?

ओंकारनाथ—क्या मालूम। हमें तो लौट कर कुछ उत्तर भी नहीं दिया।

इसके बाद ओंकारनाथ अपने काम पर चले गए। वे कपड़े की एक दूकान पर मुनीमी का काम करते हैं और पच्चीस रुपये वेतन पाते हैं।

ओंकारनाथ के चले जाने पर कौशिल्या कुछ देर तक मुँह लटकाये बैठी रही। करुणा ने उठ कर कौशिल्या के पास आने और कुछ कहने का साहस किया परन्तु भय के मारे उसके

मुँह से कोई बात न निकली। कौशिल्या ने उसकी ओर गरदन उठा कर न देखा। करुणा घर का काम-काज करने लगी।

दोपहर का समय था। सभी लोग खा-पी चुके थे। कौशिल्या अपने बच्चों को लेकर, किसी के घर चली गयी। करुणा कुछ देर तक काम करती रही और काम करके वह कोठे पर गयी, वहाँ पर एक पुस्तक लेकर चारपाई पर लेट गयी और लेटे-लेटे उसको पढ़ने लगी।

लोकनाथ खाना खाकर, लाला शंकरलाल के घर गया था। शंकरलाल किसी सरकारी आफ़िस में काम करते हैं, उन्होंने लोकनाथ को काम दिलाने के लिए आज दोपहर को बुलाया था, शंकरलाल की आज छुट्टी थी।

लोकनाथ जब शंकरलाल के घर पहुँचा तो मालूम हुआ कि वे सो रहे हैं, जिस आदमी ने बताया, उसने यह भी कहा कि थोड़ी देर बैठो, अभी वे जागेंगे। लोकनाथ वहीं, उनके कमरे में बैठ गया। उस कमरे में शंकरलाल के बूढ़े पिता एक चारपाई पर लेटे थे और तीन लड़के तास खेल रहे थे। लोकनाथ वहीं पर बैठ कर शंकरलाल का रास्ता देखने लगा। बड़ी देर हो गयी। लेकिन शंकरलाल सोकर न उठे। लोकनाथ बैठे-बैठे ऊबने लगा। वह बाहर निकल कर नीम के पेड़ के नीचे टहलने लगा और मन-ही-मन सोचने लगा—मैं कब तक यहाँ बैठा रहूँगा, न जाने वे कब तक सोते रहेंगे। मुझे आए हुए लगभग एक घण्टा हो गया।

लोकनाथ जिस समय लौटकर चलने की बात सोच रहा था, उसको उसी समय खयाल हुआ कि आज उन्होंने बुलाया था। लौट जाने पर न जाने कब भेंट हो। इसलिए कुछ देर और ठहर जाना चाहिए।

लोकनाथ कमरे में आकर फिर बैठ गया, उसी समय आँखें मलते हुए लाला शंकरलाल भीतर से आये और लोकनाथ को देखकर पूछा—अच्छा आप आ गये हैं ?

लोकनाथ ने नमस्कार करके कहा—जी हाँ।

शंकरलाल एक पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गये और सिगरेट निकाल कर पीने लगे। सिगरेट पीते-पीते उन्होंने पूछा—आपने और कहीं कुछ काम किया है ?

लोकनाथ—जी नहीं, मैंने और तो कहीं काम नहीं किया।

लोकनाथ की बात सुनकर शंकरलाल ने एक बार हूँ किया और वे फिर सिगरेट पीने लगे। लोकनाथ उत्तर देकर चुप हो गया। कुछ देर के बाद शंकरलाल ने कहा—आपके भाई ओंकारनाथ ने तो कहा था कि कहीं कुछ काम किया है ?

लोकनाथ—कुछ दिनों तक एक वकील के लड़के को हिन्दी पढ़ाने का काम किया था। परन्तु उसके लिए क्या।

शंकरलाल—किसी आफ़िस में कुछ काम किया है ?

लोकनाथ—नहीं, किसी आफ़िस में काम नहीं किया।

अच्छा, अपने हाथ से एक प्रार्थना-पत्र लिख कर, किसी दिन हमको दे जाइये, हम उसको अपने यहाँ आफ़िस के साहब को दे देंगे और अगर आवश्यकता होगी तो हम आपकी सिफ़ारिश भी कर देंगे। कहकर शंकरलाल भीतर जाने लगे। लोकनाथ कुछ पूछना चाहता था, लेकिन भीतर जाते देख कर उसको कुछ कहने का साहस न हुआ, उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अपने घर की ओर चलता हुआ। रास्ते में, वह मन-ही-मन अनुभव कर रहा था कि यदि नौकरी हमारी पक्की हो जाय तो फिर हम बड़े

सुखी हो सकते हैं। जब हम तनख्वाह लाया करेंगे तो करुणा के हाथ में देंगे, उस समय करुणा कितनी प्रसन्न होगी!

लोकनाथ मन-ही-मन इन बातों को सोचता था और प्रसन्न हो रहा था। करुणा उसके लिए कितने सुख और सौभाग्य की वस्तु है, इस बात को उसका हृदय ही जानता है। वह रास्ते में चलता था तो करुणा का स्मरण करता था। जब वह कभी एकान्त में शान्त होकर बैठता था तो उस समय करुणा के मधुर स्वर बार-बार उसके कानों में प्रतिध्वनि करते थे।

अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ लोकनाथ जब घर पहुँचा, उस समय कौशिल्या अपने बच्चों के कपड़े धो रही थी। लोकनाथ ने तेजी के साथ अपनी दृष्टि दौड़ाते हुए घर में इधर-उधर देखा परतु करुणा कहीं पर न दिखाई पड़ी। वह मकान की छत पर चढ़कर ऊपर गया तो देखा कि कोठे में चारपाई पर लेटी हुई करुणा सो गयी है, उसकी छाती पर एक बड़ी पुस्तक रक्खी हुई है, करुणा अपने दोनों हाथों की उँगलियों से उसको पकड़े हुए है। उसके आञ्चल से उसका आधा मुख ढका हुआ है। लोकनाथ चारपाई के समीप जाकर खड़ा होगया। उसने करुणा के अर्द्ध अनावृत मुख को ध्यानपूर्वक देखा। उसने उसको पकड़ कर जगाना चाहा परन्तु वह फिर रुक गया। लोकनाथ ने उसके मुख के एक ओर का वस्त्राच्छादित भाग खींचने की चेष्टा की। धीरे से अपनी उँगलियों के द्वारा उसने उस वस्त्र को हटाना चाहा, उसी समय करुणा एक दीर्घ साँस खींचकर फिर निद्राभिभूत होगयी। लोकनाथ उसी चारपाई पर बैठकर, करुणा का एक हाथ अपने वामपार्श्व से स्पर्श करते हुए अपना दाहिना हाथ उसके वक्षस्थल पर रक्खा और धीरे से कहा—करुणा।

करुणा की निद्रा टूट गयी, आँखें खुलते ही उसकी दृष्टि लोकनाथ के मुँह पर पड़ी, उसके अर्द्धोन्मीलित नेत्रों में स्नेह-प्रस्फुटन के साथ-साथ रक्ताभ होष्ठों में मधुर मुस्कान की लालिमा दिखाई देगयी। लोकनाथ ने स्नेह विगलित कंठ से कहा—करुणा, अभी कितनी देर सोओगी ?

करुणा ने अपने गम्भीर तथा विशाल नेत्रों से लोकनाथ के मुख को देखा, उसके मुँह से कुछ उत्तर न निकला। अपनी अनेक क्षण पर्यन्त अचञ्चल अवस्था में रहकर धीरे-धीरे सिर हिलाते हुए, अब और अधिक सोने की बात को उसने अस्वीकार किया ! लोकनाथ ने फिर कहा—करुणा !

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। कानों के होते हुए भी उसने न सुना ! जिह्वा के होने पर भी उससे बोलते न बना ! लोकनाथ को ऐसा जान पड़ा मानों वह बोलना नहीं जानती ! क्षण-भर अचञ्चल रहकर उसके नेत्र फिर अस्थिर हो उठते। करुणा के निर्निमेष नेत्र उत्तर दे रहे थे ! लोकनाथ ने फिर कहा—करुणा !

करुणा ने फिर दीर्घ निश्वास खींचकर लोकनाथ की ओर देखा और मुस्करा दिया। लोकनाथ ने मुस्करा कर पूछा—करुणा क्या था ?

करुणा ने अपने अस्थिर नेत्रों को नीचे-ऊपर करते हुए कहा—पता नहीं !

"बताओगी नहीं," कह कर लोकनाथ ने करुणा का दाहिना हाथ पकड़ा। करुणा ने बात को बदल कर पूछा—आज कहाँ गये थे ?

लोकनाथ ने कुछ गम्भीर होकर कहा—एक आदमी के घर गये थे।

करुणा—क्यों, क्या काम था ?

लोकनाथ—उसके आफ़िस में हम नौकरी करना चाहते हैं; इसीलिए उनके पास गये थे।

अपनी बात समाप्त करके लोकनाथ चुप होगया। क्षण-भर ठहरकर करुणा ने फिर पूछा—तो फिर क्या हुआ ?

लोकनाथ ने करुणा के एक पार्श्व में रखी हुई पुस्तक को उठाकर देखा और उसके पन्ने उलटते हुए उत्तर दिया—कुछ देर तक उनसे बातें होती रहीं; अंत में उन्होंने कहा कि प्रार्थना-पत्र लिखकर हमें दे जाओ। अब किसी दिन जाकर दे आवेंगे।

लोकनाथ का उत्तर सुनकर करुणा कुछ सोचने लगी और उसके बाद उसने फिर पूछा--कितना वेतन मिलेगा ?

लोकनाथ ने कुछ ठहर कर कहा--अभी यह कुछ नहीं मालूम।

यह सुनकर करुणा चुप होकर कुछ सोचने लगी—घर में ओंकारनाथ और कौशिल्या में जो बातें उसने सुनी थीं, वे एक-एक करके उसके सामने आने लगीं। कुछ ठहर कर करुणा ने आदर के साथ कहा—तो जो कुछ बात हुई हो, दादा से कह देना।

लोकनाथ ने कुछ उत्सुक होकर पूछा—क्यों, क्या बात है ? क्या वे कुछ कहते थे ?

करुणा ने सरलता पूर्वक कहा—नहीं, वैसे ही मैंने कहा। उनसे कह देने पर उनको भी प्रसन्नता होगी। न कहने से उनको कैसे मालूम होगा कि क्या बातचीत हुई।

करुणा चुप होगई। लोकनाथ भी चुप था। करुणा ने चारपाई से उठकर पुस्तक को अलमारी में रखा। उसके बाद घूमकर देखा, लोकनाथ चुप, शान्त बैठा था। करुणा ने चारपाई पर बैठकर पूछा--क्यों, कैसे चुप हो गये ?

लोकनाथ ने शुष्क हँसी हँसकर कहा--यों ही, कोई बात नहीं है।

करुणा को सन्तोष न हुआ। उसने फिर पूछा—फिर भी, क्या सोचने लगे ?

लोकनाथ ने कोठे के एक कोने की ओर गम्भीरता के साथ चण-भर देखा और फिर दीर्घश्वास लेकर कहा—आज जहाँ हम गये थे, वे बड़े आदमी हैं, पैसे वाले हैं, सुखी हैं। अपनी नींद सोते हैं, अपनी नींद जागते हैं। जब मैं पहुँचा तो वे सो रहे थे। जब मैंने यह सुना तो मैं न जाने क्या-क्या सोच गया।

लोकनाथ अपनी बात समाप्त करके चुप हो रहा। बात समाप्त हो जाने पर भी करुणा उसकी ओर देखती ही रही। लोकनाथ के चुप हो जाने पर उसने पूछा—क्या-क्या सोच गये।

"यह मेरा पागलपन है," लोकनाथ ने विद्रूप हँसी हँसकर कहा—करुणा की उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उसने पूछा—क्या मेरे वह जानने योग्य नहीं है ?

लोकनाथ—है क्यों नहीं।

करुणा—फिर क्या बात है ?

लोकनाथ ने अपने ऊपर के होठ को दाँतों के नीचे दाबते हुए कहा—जब हमने सुना कि वे सो रहे हैं, तो हमें उसी समय तुम्हारी याद आयी; हमें ऐसा जान पड़ने लगा कि यदि हम भी

अपने घर में होते, आराम से लेटे होते, हमारे पास तुम होतीं तो हम कितने सुखी न होते, लेकिन यह भाग्य सब को नहीं मिलता।

लोकनाथ चुप हो गया। करुणा हँसने लगी। हँसते-हँसते उसने कहा—बस इतनी ही बात!

लोकनाथ ने कुछ उत्तर न दिया। वह करुणा के मुख की ओर देखने लगा। उसके नेत्रों में अतृप्ति और गम्भीरता देखकर करुणा की आँखें अस्थिर हो उठीं। वह अब और अधिक लोक-नाथ की ओर देख न सकी।

करुणा ने अपने भावों को बदल कर कहा—जीवन का यह कोई बहुत बड़ा सुख नहीं है।

आश्चर्य के साथ लोकनाथ ने पूछा—जीवन का यह कोई बड़ा सुख नहीं है?

हँसते हुए करुणा ने सिर हिलाकर इन्कार किया। लोकनाथ विमुग्ध दृष्टि से करुणा के मुख की ओर देख रहा था। उसकी समझ में करुणा की बात न आयी। वह जितना ही सोचता, उसके हृदय में उतना ही विस्मय बढ़ता जाता।

उसी समय, नीचे कौशिल्या की आवाज़ सुनाई पड़ी। करुणा ने चारपाई से उठते हुए कहा—अब मैं जाती हूँ।

लोकनाथ की इच्छा थी कि करुणा अभी बैठे, पर करुणा ने ऊपर रुकना अनावश्यक समझा। लोकनाथ बड़ी तत्परता के साथ उसके रोकने का कोई बहाना सोचने लगा। कोई और बात न सूझ पड़ने पर उसने कहा—अभी घर में काम ही क्या है?

करुणा—काम क्यों नहीं है, दोपहर बीत गई। थोड़ी देर के बाद सायंकाल होगा। तुम तो उस अमीर को देखकर आये हो, तुमको सोने के सिवा कोई काम कैसे दिखाई देगा।

विस्मय विस्फारित नेत्रों से देख कर लोकनाथ ने पूछा—क्या वह सुख नहीं है ?

'रात-दिन सोना भी कोई सुख है' करुणा ने मुँह बना कर उत्तर दिया।

'तब और सुख क्या है ?' लोकनाथ ने उतावली के साथ पूछा।

'सुख, सुख, मैं इस बात को अभी तक नहीं समझी कि लोग सुख किस को कहते हैं,' कहती हुई करुणा कोठे से जाने लगी। वह छत पर जितनी दूर तक चलती गई, पीछे लोकनाथ की ओर देखती रही, उसके बाद क्षण-भर ठहर कर, उसने एक बार फिर लोकनाथ की ओर देखा और फिर नीचे उतर कर चली गयी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

प्रार्थना-पत्र भेजे हुए कई दिन बीत गये। इस बीच में लोकनाथ ने जब-जब चाहा कि मैं नौकरी के सम्बन्ध में भाई और भौजाई से कुछ कहूँ तब-तब कुछ ऐसी बातें पड़ती गयीं कि बात करने का अवसर नहीं मिला।

जिस दिन लोकनाथ प्रार्थना-पत्र देने गया था, उस दिन शंकरलाल से जो बातें हुई थीं, उन बातों से लोकनाथ को नौकरी जल्दी मिलने की कोई आशा न रही थी। शंकरलाल ने बताया था कि अभी कोई जगह खाली नहीं है। उन्होंने यह भी कहा था कि आवश्यकता होने पर हम इसके लिए कोशिश करेंगे।

इसी बात को लेकर लोकनाथ दो-तीन दिनों से बहुत चिन्तित था। आज सुबह घर से निकल कर वह कई स्थानों में मारा-मारा फिरता रहा। जब वह घर लौटा तो दोपहर के दो बज चुके थे। अभी तक उसने कुछ खाया-पिया न था। उसका मुख मुरझाया हुआ था। अपनी अवस्था पर उसको बहुत ग्लानि मालूम होती थी। जिस समय वह घर पहुँचा, कौशिल्या ने देखते ही कहा—अब तुम अपना हमसे अलग होने का प्रबन्ध करो। तुम बाबू साहब, तुम्हारी स्त्री बीबी साहब। खाने को कहाँ से आवे। तुम तो आराम से दोनों समय पेट-भर खाना खाते हो। तुमको इस बात का क्या पता कि घर कैसे चल रहा है। जब तक हो सका, निर्वाह किया गया! अब एक दिन भी हमारे घर में तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता।

भावज की बातें सुन कर लोकनाथ अवाक होकर रह गया। उसके मुँह से कोई बात न निकली। वह सोचने लगा, मुझे क्या करना चाहिए। इधर दो-तीन दिनों से वह यों ही चिन्तित था: दूसरे आज जिस प्रकार भूखे प्यासे रह कर उसने समय काटा था, उसको वही जानता था। कौशिल्या ने जिस प्रकार की बातें आज उससे कही हैं उस प्रकार की बातें उसने और कभी न सुनी थीं! उन बातों को सुन कर वह मन-ही-मन सोचने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए। उसी समय कौशिल्या ने फिर कहा—

अपनी स्त्री को लो और जहाँ चाहो तहाँ जाओ। आज से हमारे घर में तुम्हारा गुज़र नहीं हो सकता। जब तक कुछ करने के लायक न थे, तब तक सब कुछ किया। लिखाया-पढ़ाया; लेकिन अब बच्चे नहीं हो, कमाकर खा सकते हो इसलिये आज से हमारा साफ़-साफ़ जवाब है।

लोकनाथ को ये बातें सहन न हुईं। उसका यह अपमान, उसके जीवन में पहले पहल था। उसी समय उसकी आँखें करुणा पर पड़ीं। वह कुछ दूर पर बैठी हुई थी और सिर झुका कर रह गयी थी। लोकनाथ ने कहा—अच्छी बात है। तुम हमारी चिन्ता न करो। हमें ईश्वर ने हाथ पैर दिए हैं। हम भी कमा-खा सकते हैं।

कौशिल्या ने अपनी आवाज को और ऊँचा करके कहा—जिस दिन कमा कर खाओगे, उस दिन मालूम होगा। अभी तक दूसरे की कमाई खायी है।

लोकनाथ का क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उसने कहा—हम कमाकर खायँगे या भूखों मरेंगे। जब तुम्हारे दरवाजे माँगने आवें, तब तुम हमको खाने को न देना।

कौशिल्या ने अकड़ कर उत्तर दिया—मुनासिब तो ऐसा ही है कि आज से तुम हमारे घर का अन्न-जल ग्रहण न करो।

कौशिल्या की इस बात को सुनकर लोकनाथ का स्वाभिमान जागृत हो उठा। वह अपना अपमान कभी देखना न चाहता था। उसके मन में यह बात आयी कि मैं भी इसी प्रकार का जवाब दूँ परन्तु कुछ सोच-विचार कर वह वहाँ से ऊपर अपने कोठे में चला गया और वहाँ जाकर चारपाई पर लेट गया। क्रोध के आवेश के कारण उसके शरीर का रक्त उत्तप्त हो उठा था। चारपाई पर ज्यों ही वह लेटा, उसके कानों में कौशिल्या के शब्दों कि बार-बार प्रतिध्वनि होने लगी, मुनासिब तो ऐसा ही है कि आज से तुम हमारे घर का अन्न-जल ग्रहण न करो।

लोकनाथ सोचने लगा—क्या मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि मैं अपना पेट भर सकूँ। लाखों करोड़ों आदमी अपने लिये रोटी कमा सकते हैं, अपने बाल-बच्चों का पालन कर सकते हैं किन्तु मैं कुछ नहीं कर सकता, यह कैसे हो सकता है। पशु भी अपना पेट भर लेते हैं, फिर मैं तो मनुष्य हूँ।

लोकनाथ की अवस्था अद्भुत हो गयी। जब तक लौट कर घर न आया था, भूख और प्यास को वह बराबर अनुभव कर रहा था। परन्तु कौशिल्या की बातों को सुन कर उसकी भूख-प्यास न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी। वह बार-बार सोचने लगा, अब मैं आज से इस घर में अन्न ग्रहण न करूँगा। देखता हूँ, ईश्वर मेरे लिये कहीं कुछ प्रबन्ध करता है या नहीं।

लोकनाथ के ऊपर चले आने पर भी कौशिल्या कुछ-न-कुछ बड़बड़ाती ही रही। करुणा ने कई बार हाथ जोड़े, प्रार्थना की;

परन्तु उसका कुछ फल न हुआ। जीवन की यह कलह करुणा के लिए बहुत अप्रिय थी। आज दोपहर तक लोकनाथ के घर न आने पर करुणा मन-ही-मन व्याकुलता अनुभव कर रही थी। उसने भी खाना न खाया था। खाने के लिए उससे किसी ने कहा भी न था। लोकनाथ के आने पर जो बातें उत्पन्न हुईं, उनकी करुणा ने कल्पना भी न की थी।

लोकनाथ ने खाना नहीं खाया था, इसी बात को लेकर उसका हृदय बेचैन हो रहा था, वह सोचती थी, आज दिन-भर बीत गया, कुछ खाया नहीं है, भूखे होंगे। न जाने आज किसका मुँह देखा था। शाम आ रही है, जाने शाम को भी खायँगे या न खायँगे।

जिस समय करुणा घर में बैठी हुई यह सब सोच रही थी, उसी समय लोकनाथ ऊपर से उतरा और बिना कुछ घर में बोले बाहर चला गया। करुणा ने सिर उठाकर लोकनाथ की ओर देखा परन्तु लोकनाथ ने घर में किसी ओर न देखा। लोकनाथ के निकलते समय, करुणा के शैशव हृदय ने उमड़ कर उससे पूछना चाहा कि कहाँ जाते हो, परन्तु घर में कौशिल्या थी। वह लज्जा, भय और संकोच से कुछ बोल न सकी। लोकनाथ घर से निकल कर चला गया। करुणा ने देखा परन्तु वह कुछ बोल न सकी। अनेक प्रकार की चिन्तापूर्ण बातों को सोच-विचार कर उसके हृदयाकाश में बादल उमड़े, उसका हृदय तड़प उठा, अन्तस्थल उद्वेलित-विगलित हो गया किन्तु नेत्रों में आए हुए दो-चार आँसुओं को अपनी धोती के आञ्चल में पोंछकर वह शान्त हो गयी।

दिन समाप्त होगया। ओंकारनाथ जैसे ही घर आए कौशिल्या

ने आवेग के साथ गरजते हुए कहा—तुम्हारी रोटियों की लोकनाथ को जरूरत नहीं है, आज उन्होंने इस बात को साफ़ कर दिया।

ओंकारनाथ के हाथ में कागज में बँधी हुई कोई चीज़ थी, उसको कौशिल्या के हाथ में देते हुए उन्होंने कहा—बड़ी अच्छी बात है। उनको अगर हमारी रोटियों की जरूरत नहीं है तो हमारे ही पास रोटियाँ ऐसी कहाँ हैं जो हम उनको मनावें।

ओंकारनाथ की बात समाप्त होते-होते कौशिल्या ने कहा—उनका अहङ्कार मुझे आज ही मालूम हुआ। मैंने यही कहा था कि हमारी ऐसी हालत नहीं है जो तुम बैठे-बैठे खाओ। इस तरह कब तक गुजर होगा। आपने यह सुनकर गरजते हुए जवाब दिया, कि हम किसी के भरोसे नहीं हैं।

ओंकारनाथ—अच्छी बात है, वे किसी के भरोसे नहीं हैं तो हमही कब उनके भरोसे हैं।

इसी प्रकार की बातें ओंकारनाथ और कौशिल्या में बड़ी देर तक होती रहीं। करुणा ने इन बातों को सुना, उसने चाहा कि मैं कुछ कहूँ, परन्तु फिर उसने सोचा, कहीं मेरे कुछ कहने से और अप्रसन्न न हों। इसी समय कौशिल्या ने कहा—दुनियाँ में कोई किसी का नहीं होता। पढ़ने-लिखने में कितना ख़र्च न हुआ, जब जो कहा, जहाँ तक होसका, उसको पूरा किया। इतनी बड़ी उमर तक बिठाकर खिलाया-पिलाया, अब कमाने लायक़ हैं, अब भला किसकी परवाह हो सकती है।

ओंकारनाथ कुछ खा रहे थे। खाते-खाते उन्होंने कहा—उँह, हमको इन बातों की परवाह नहीं है, वे अपना कमायें-खायें और सुखी हों, अपना-अपना भाग्य सब के साथ होता है। जिसके

जो भाग्य में होगा, उसको कोई मेट नहीं सकता और जिसके जो भाग्य में न होगा, उसको कोई दे नहीं सकता।

करुणा घर के एक कोने में बैठी हुई इन बातों को सुन रही थी। उसने कुछ कहने के लिए फिर साहस किया और सोच विचारकर कहा—आप बड़े हैं; समझदार हैं, छोटों की बातों का ख्याल नहीं किया जाता, उनको रास्ते लगाया जाता है। मुझसे यदि भूल हो जाय तो क्षमा करना ही आपका काम है।

कौशिल्या ने तड़पकर कहा—हड्डियाँ घुला-घुलाकर कमायें और उनको बैठे खिलायें, जब कुछ बात पड़े तो ऊपर से बातें सहें। तू बड़ी पंडित बनकर समझाने आई है।

करुणा ने विनम्र होकर कहा—मैं पंडित नहीं हूँ, समझाने भी नहीं आयी, मैं तो छोटी हूँ, छोटी बुद्धि में जो बात मेरे मन में आयी वही कह दी।

करुणा की बातों से कौशिल्या का क्रोध कुछ कम न हुआ वरन् कुछ अधिक ही होगया। उसने आवेश के साथ अपने हाथों को फैला-फैलाकर कहना आरंभ किया—

अहा हा! बड़ी सीधी-सादी है, जैसे कुछ जानती नहीं है। सुनने वाले समझेंगे कि बड़ी समझदारी की बातें करती है। जब लोकनाथ तड़प-तड़पकर बोल रहे थे, तब मुँह से बोल न निकला था, तब यह बुद्धि कहाँ गयी थी—तब समझाया होता। आयी है ढोंग रचने!

इन कठोर और जलती हुई बातों को सुनकर करुणा की आँखों में आँसू आगये। उसने कहा नहीं, मैं ढोंग नहीं रचती। अगर मुझसे कुछ अपराध होगया हो तो तुम उसको क्षमा करो। मैं तुमसे छोटी हूँ, तुम्हारी क्षमा में ही मेरा कल्याण है।

ओंकारनाथ ने इन बातों को सुना। ऐसी बातों में उन्होंने कौशिल्या के विरुद्ध कभी कुछ नहीं किया। टोला-पड़ोस के स्त्री-पुरुषों से जब कभी लड़ाई हुई है तो कौशिल्या ने जो कुछ कहा है, ओंकारनाथ ने सदा उसी का समर्थन किया है। आज करुणा की बातों को सुनकर उनके हृदय में दया हो आयी। कुल्ला करते हुए उन्होंने कहा—लोकनाथ ने जो कुछ किया सो किया, परन्तु वह क्या कहती है, यह भी तो सुनो। निकम्मा और अपराधी लोकनाथ है लेकिन इसमें इसका क्या दोष।

ओंकारनाथ की इन बातों से कौशिल्या को अत्यन्त विस्मय हुआ, उसको ऐसा विश्वास न था कि वे कौशिल्या के विरुद्ध करुणा के साथ अपनापन कभी प्रकट करेंगे। उसने जलकर कहा—

तुम देखो, मुझे देखने की जरूरत नहीं है, तुम सुनो, मुझे सुनने की भी जरूरत नहीं, मैं बहुत देख चुकी—बहुत सुन चुकी, अब तुम देखो-सुनो।

यह कहकर कौशिल्या घर का कुछ काम करने लगी। ओंकारनाथ कपड़े पहन रहे थे, उसी समय लोकनाथ बाहर से आया और तेजी के साथ घर से होकर ऊपर जाने लगा। लोकनाथ को देखकर, ओंकारनाथ ने पूछा—तुम क्या अपने लिए कर रहे हो, क्या हम भी कुछ जान सकते हैं?

लोकनाथ दिन-भर का भूखा-प्यासा था। उसकी बुद्धि कुछ काम न करती थी। चारों ओर उसको अंधकार दिखाई पड़ता था। उसके हृदय की अवस्था बड़ी निर्बल हो गई थी, उसको कहीं पर कोई अपना न दिखाई पड़ता था, ओंकारनाथ की बात को सुनकर पहले उसने सोचा कि मैं अपनी परिस्थिति साफ कर

दूँ परन्तु कौशिल्या की बातों का स्मरण करके उसके मन में स्वाभिमान का अंकुर उदय हुआ। ओंकारनाथ की बात का उत्तर देते हुए उसने कहा—जो कुछ समझ में आवेगा! वही करूँगा, मैं जूते खाकर किसी की रोटियाँ नहीं खाना चाहता।

लोकनाथ की बातों से ओंकारनाथ को संतोष न हुआ। उन्होंने कुछ बिगड़कर कहा—जूते खाने पर भी मुफ़ में कहीं रोटियाँ नहीं मिलतीं! निकम्मे आदमी भूखों ही मरते हैं और कुछ नहीं होता।

लोकनाथ ने फिर उसी स्वाभिमान के साथ कहा—अगर मैं निकम्मा हूँ तो भूखों मर जाना पसन्द करूँगा; परन्तु आप से रोटियाँ माँगने न आऊँगा, इस बात का आप विश्वास रखें।

यह कहकर लोकनाथ ऊपर चला गया। करुणा वहीं घर पर मौजूद थी। लोकनाथ के घर आने पर और कुछ बातें आरम्भ होने पर उसने चाहा कि कुछ ऐसी बातें हों जिनसे घर की यह कलह मिट जाय। लोकनाथ ने स्वाभिमान में आकर जो बात कही, करुणा उनको न सोच कर कुछ और ही सोच रही थी। उसका हृदय बहुत अधीर हो रहा था।

लोकनाथ ऊपर चला गया। ओंकारनाथ कपड़े पहन चुके थे। लोकनाथ की बातों को सुनकर ओंकारनाथ सोचने लगे, कौशिल्या का कहना बहुत अंशों में सही जान पड़ता है। नहीं तो वह इस प्रकार कभी न बिगड़ती। यह सोचते हुए ओंकारनाथ बाहर चले गये। कौशिल्या अपने बच्चों को खिलाती जाती थी और कहती जाती थी, अब देखूँगी मैं, घर में बैठकर कौन कल से रोटी खाता है। परमात्मा ने बड़े-बड़े अभिमानियों के अभिमान नहीं रखे, अभी तक दूसरे की कमाई खाई है। कमाकर नहीं

खाया, जिस दिन कमाकर खायेंगे। उस दिन आँखें खुल जायेंगी।

कौशिल्या जोर-जोर के साथ बातें करती जाती थी और अपने आवेशपूर्ण नेत्रों से बार-बार मकान के ऊपर देखती जाती थी। लोकनाथ छत के ऊपर से इन सभी बातों को सुन रहा था। मैं निकम्मा हूँ, असमर्थ हूँ, किसी योग्य नहीं हूँ, पतित हूँ और अपमान के ही योग्य हूँ, इस बात को लोकनाथ न समझता था। 'करुणा संसार की अनुपम सुन्दरी है। उसके अपूर्व सौन्दर्य में संसार के शत-शत सौभाग्य निछावर हैं, जो करुणा इतनी सुन्दरी है—इतनी सौभाग्यवती है, उसके लिये मैं कितना आदरणीय हूँ' लोकनाथ के स्वाभिमान का बहुत कुछ यही कारण था। आज यदि घर में करुणा न होती और किसी ने उसको कुछ कहा होता तो कदाचित् लोकनाथ को वे बातें असह्य न होतीं, परन्तु अपनी मान-मर्यादा को वह करुणा के देखते देखते पद्दलित नहीं होने देना चाहता था। करुणा उसका अपमान देखे, लोकनाथ को एक मिनट के लिये भी यह सह्य न था।

लोकनाथ कौशिल्या की बढ़-बढ़कर बातों को सहन न कर सका, उसने चाहा कि मैं इसी समय फटकार बताऊँ लेकिन फिर कुछ सोच-समझकर उसने कहा—

अब तक मैं बहुत सुन चुका, अब मैं कोई बात सुनना नहीं चाहता इसलिए मिहरबानी करके तुम अपना मुँह बन्द करो और अब हमारे लिए कोई भी बात न कहना।

कौशिल्या ने आँगन में आकर क्रोध के साथ कहा—क्यों, क्या करोगे, क्या तुम अपने आपको समझते हो। तुम किसी दूसरे के भरोसे न रहना, तुम्हारा यह अहंकार मिट्टी में मिल जायगा!

लोकनाथ—तुम्हारा यह भ्रम है कि तुम मेरा अभिमान मिट्टी में मिला सकती हो, कहीं उलटा न हो जाय। ज़रा आँख खोल कर देखो और मेरी नहीं; अपनी रक्षा का उपाय सोचो।

कौशिल्या ने फिर तड़पकर कहा—मेरा,मेरा कौन क्या कर सकता है, पहले मैं उसकी शकल भी तो देखूँ? ज़बान सम्हाल कर बोलना।

'ज़बान सम्हालकर बोलना मैं नहीं जानता, जो मुझे कहेगा, उसको मैं भी कहूँगा। मुझे किसी का डर नहीं पड़ा। तुम कहीं की नवाब नहीं हो।' कहकर लोकनाथ ने करुणा की ओर देखा।

कौशिल्या—तो हमको ही तुम्हारा कब डर है। तुम्हारी हैसियत नहीं है जो एक बात भी तुम मेरे लिये कह सको। तुम हो कौन कहनेवाले, न तुम्हारा खाती हूँ, न तुम्हारा पहनती हूँ और न तुम्हारी कुछ परवाह ही करती हूँ।

लोकनाथ ने इस बार ज़ोर से कहा—फिर मैं तुम से एक बार कहता हूँ कि अब तुम चुप रहो। अब तक मैंने बहुत कुछ सुना और सहा। अब मैं तुम्हारी एक बात भी सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ।

लोकनाथ चुप हो गया। कौशिल्या ने दाँत पीसते हुए कहा—अच्छा देखूँगी मैं, यह दुनिया है। जिसको खिलाया-पिलाया, वही अपना दुश्मन निकला। क्या मालूम था कि पेट काटकर जिसको पालेंगे, वही हमारे लिए आस्तीन का साँप हो जायगा।

रात को नौ बज गये होंगे। करुणा बिना खाये-पिये सोच रही थी, इन सब बातों का परिणाम क्या होगा? क्या मेरे जीवन में एक न एक कलह बनी ही रहेगी?

उसी समय ऊपर से लोकनाथ ने आवाज़ दी—करुणा, ओ

करुणा। करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया और धीरे से उठकर वह ऊपर चली गयी।

लोकनाथ चारपाई पर लेटा था, करुणा उसी में जाकर बैठ गयी। लोकनाथ ने पूछा—तुम क्या कर रही थी?

करुणा ने कहा—मैं बैठी हुई थी।

लोकनाथ—और वे?

करुणा—वे बच्चों को लेकर लेट गई थीं।

लोकनाथ—सो गयी थीं।

करुणा—पता नहीं।

करुणा चुप हो गयी। लोकनाथ भी कुछ देर तक कुछ न बोला। यह देख कर करुणा ने कहा—तुमने दादा से वैसा क्यों कहा? उनका तो..........।

लोकनाथ ने बीच में ही बात काट कर पूछा—कैसा?

करुणा—जो कुछ तुमने कहा था, उससे मालूम होता था कि तुम क्रोध में हो, लेकिन जब दादा ने पूछा था तो तुम्हें सब बातें समझा देनी थीं। ऐसा करने से ये बातें इतनी न बढ़तीं।

लोकनाथ—बातें क्या मेरे बढ़ाने से बढ़ी हैं। भावज ने जो कुछ कहा है, वे क्या मामूली बातें हैं। उन बातों को सुनने और सहने से तो मर जाना अच्छा है!

लोकनाथ का मुँह बहुत गम्भीर हो गया था। करुणा ने इस बात को अनुभव किया और बहुत सावधानी के साथ कहा—यह तो ठीक है उनकी बातें बहुत कड़ी थीं लेकिन मैं समझती हूँ कि दादा ने जो पूछा था, उस समय उनके मन में कोई ऐसी बात न थी। यदि उनको समझा कर तुम कहते तो घर में इतनी अशान्ति न होती।

'इतनी अशान्ति कैसे न होती, अशान्ति का सारा विष तो उनकी रानी साहब बो चुकी थीं' लोकनाथ ने उत्तेजित होकर कहा।

करुणा ने विनम्र होकर—बो चुकी थीं परन्तु उनकी बातों के साथ यदि हम लोग यह सोचें कि वे बड़ी हैं, उनको ईश्वर के घर से अधिकार है, इसलिये वे सब कुछ कह सकती हैं, ईश्वर ने उनको बड़ा बनाया है इसलिये वे कहने के अधिकारी हैं और हम छोटे हैं इसलिये सुन लेना ही हमारा काम है।

लोकनाथ ने बिगड़ कर कहा—लेकिन हमारा काम नहीं है। तुम सुन सकती हो सुनो, परन्तु हम तो नहीं सुन सकते।

लोकनाथ कहकर चुप हो गया। करुणा ने कुछ उत्तर न दिया और वह कातर दृष्टि से लोकनाथ की ओर देखने लगी। लोकनाथ को अनुभव हुआ मानों करुणा की दृष्टि में भी हमारी ही भूल है। यह सोच कर उसका हृदय बेचैनी से उद्विग्न होने लगा। कुछ सोच कर उसने करुणा से पूछा—क्या तुमने भी मुझे वही समझा है जैसा वे समझती हैं? यदि यही बात है तो अब घर में मेरे रहने की जरूरत नहीं है।

लोकनाथ की बात सुन कर करुणा घबरा उठी और अधीरता के साथ कहने लगी—मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है, आज घर की इन बातों को सुन कर मेरे हृदय में बड़ी व्याकुलता पैदा हो गयी है। रह-रह कर मेरा जी घबरा रहा है। अभी तुम्हारी बहुत बड़ी अवस्था नहीं है। घर को छोड़ कर और कोई सहायक भी नहीं है, ऐसी दशा में तुम्हारा कौन साथ देगा? तुम किसके यहाँ जाओगे?

करुणा की आँखों में आँसू आ गए, उसने धोती से आँखों

का अश्रु-मोचन किया और क्षण-भर ठहर कर फिर कहा—आज तुमने खाना नहीं खाया, यह देखकर दोपहर से ही मेरे प्राण निकल रहे थे। उसके बाद भी यह नौबत आयी। कल शाम के खाये हो। यह दूसरी रात भी बीतने जा रही है। कौन बैठा है जो तुमको खाने को बुलायेगा। तुमको मना कर खिलायेगा।

करुणा आगे कुछ न कह सकी। उसका गला भर आया। उसने अपनी धोती से आँसुओं से भरी हुई आँखों को ढक लिया। करुणा की यह दशा देखकर लोकनाथ का हृदय दयार्द्र हो उठा। उससे अब अधिक न रहा गया। उसने करुणा को पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया और प्यार के साथ पूछा—तुमने रोटी खायी है या नहीं?

करुणा अपने आपको सम्हाल न सकी। उसने दो-तीन हिचकियाँ लीं, फिर शान्त हो गयी। लोकनाथ ने फिर पूछा—करुणा, तुमने कुछ खाया कि नहीं?

करुणा ने सिर उठाकर स्नेह-वारि सिञ्चित नेत्रों से लोकनाथ के मुख को देखा और कहा—हमारे खाने की तुम चिन्ता न करो। हम स्त्रियाँ हैं, जिस ईश्वर ने हम लोगों को यह जीवन दिया है, उसी ने हमको कष्ट-सहन करने की शक्ति भी दी है। लेकिन तुम मर्द हो, मर्द इन संकटों को अधिक नहीं सह सकते। तुम जाओ, रसोईघर में खाना रक्खा होगा खा आओ! जब खाने जाओगे तब तुम्हारा कोई हाथ न पकड़ेगा।

लोकनाथ ने कुछ उत्तर न दिया। करुणा के स्नेह-पूरित अन्तःकरण के इन शब्दों से उसके हृदय को बड़ी शान्ति मिली। उसके हृदय की वेदना जाती रही। जिस अधीरता और आत्म-अपमान की बातें सुन-सुनकर और सोच-सोचकर क्रोध की ज्वाला

में झुलस रहा था। एकाएक उसके उत्तप्त शरीर में मानों सैकड़ों घड़े शीतल पानी पड़ गया! थोड़ी देर के लिए अपने जीवन की कलह और अशान्ति को भूलकर उसने फिर शान्ति और सुख का अनुभव किया।

आधी रात तक दोनों में इस प्रकार बातें होती रहीं। उसके बाद दोनों, बिना खाए-पिए यों ही सो गये।

बारहवाँ परिच्छेद

जब कोई होनहार होती है तो उस समय की समस्त परिस्थितियाँ उसी के अनुसार होती चली जाती हैं।

कल सायंकाल कुछ बातें करके करुणा ने ओंकारनाथ पर जो अपना प्रभाव डाला था और उसके बदले में ओंकारनाथ ने जो कुछ कौशिल्या से कहा था, वह सब-का-सब कौशिल्या के लिये एक प्रकार की ईर्षा का कारण हो गया था। कल शाम को खा-पीकर जब कौशिल्या लेटी, उस समय ओंकारनाथ घर पर न थे। लेटे-लेटे वह अनेक प्रकार की बातें सोचती रही। जिस समय रात को ओंकारनाथ घूम-घाम कर लौटे, उस समय दस बजने का समय होगा। घर आकर जब ओंकारनाथ लेटे तो कौशिल्या ने उनसे कुछ बातचीत न की। उसको बोलते हुए न देख कर ओंकारनाथ ने स्वयम् कहा—हमने लोकनाथ से जो बातें की हैं और उनका उसने जो जवाब दिया है, उनसे ऐसा मालूम होता कि उसका सचमुच दिमाग़ फिर गया है। लेकिन उसकी उन बातों से करुणा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हमने

उसकी जो बातें सुनी हैं उनसे पता चलता है कि वह बुद्धिमान है और बुद्धिमानी की बात करती है।

कौशिल्या इन बातों को सुनकर और भी जल उठी। पहले तो उसने कुछ भी उत्तर न देना चाहा परन्तु फिर बिना बोले उससे न रहा गया। अतएव ओंकारनाथ की बात सुनकर उसने कहा—तुम जो कुछ समझे हो, ठीक है, लेकिन मुझसे अब कुछ कहो नहीं।

ओंकारनाथ ने कुछ विस्मय के साथ पूछा—क्यों ?

कौशिल्या—इसलिए कि अब सोने का समय है।

कौशिल्या की इस बात से ओंकारनाथ को संतोष न हुआ। उन्होंने कहा—और क्या बात है, तुम क्या समझती हो ? सोने का बहाना न करो जो कुछ हम समझे हैं क्या वह ग़लत है ?

कौशिल्या ने कुछ उलझन के साथ उत्तर दिया—तुम दिन-भर तो बाहर रहते हो, शाम को जब आये भी तो खाकर निकल गए। तुमको क्या पता कि कौन क्या है !

ओंकारनाथ—हाँ, इसीलिए तो तुमसे पूछते हैं कि जो कुछ हम न जानते हों, वह हमें बताओ।

कौशिल्या—जिसकी तुम बड़ी तारीफ़ करते हो, वह बातों की सीधी है। कल दोपहर को लोकनाथ ने खाना नहीं खाया और मेरी ज़रा-सी बात पर उसने चिल्ला-चिल्ला कर कहा कि हमको तुम्हारी रोटियों की ज़रूरत नहीं है, इसके बाद जब लोकनाथ ने खाना नहीं खाया तो करुणा ने भी उसी समय से खाना छोड़ दिया।

ओंकारनाथ ने विस्मय के साथ पूछा—क्या उसने भी खाना [न]हीं खाया था ?

कौशिल्या—न।

ओंकारनाथ—क्यों ?

कौशिल्या—उसी से जाकर पूछो वह तो सीधी है, समझदार है !

कुछ देर तक ओंकारनाथ के मुँह से कोई बात न निकली। वे रह-रह कर कौशिल्या की बात सोचने लगे। उसी समय कौशिल्या ने फिर कहा—वह खाना क्यों खाये, जब उसका आदमी चिल्ला-चिल्ला कर कहता है कि तुम्हारी रोटियों की हमें ज़रूरत नहीं है।

ओंकारनाथ—तो इसका अर्थ यह होता है कि लोकनाथ जो कुछ करता है, उसमें करुणा का भी हाथ है।

ओंकारनाथ की इस बात को सुनकर कौशिल्या को अपनी सफलता के लक्षण स्पष्टरूप से दिखाई देने लगे। उसने अपने आपको और भी वना कर कहा—अब तुम ही जानो। मैं अपने मुँह से अब कुछ भी न कहूँगी। जो घर पर रहता है वही जानता है कि कौन कैसा है। जो दो मिनट के लिए खाना खाने के लिए केवल आता है, वह इन बातों को नहीं समझ सकता। आज दोपहर को लोकनाथ ने ललकार-ललकार कर सैकड़ों बातें हमें कहीं हैं, उनकी बीवी साहब वहीं पर बैठी रहीं, लेकिन उसने एक बात नहीं कही कि तुम ऐसा क्यों कहते हो। आज मेरे कोई होता तो क्या मजाल थी कि कोई इस तरह कह जाता।

कहकर कौशिल्या अपनी धोती के एक कोने से आँखों को बार-बार पोंछने लगी। ओंकारनाथ से कौशिल्या की यह दशा देखी न गयी। उन्होंने क्रोध में कहा—लोकनाथ ने ये सब बातें

क्यों कहीं ? वे कहनेवाले होते कौन हैं ? उनको जहाँ जाना हो, जा सकते हैं, जो कुछ करना हो, कर सकते हैं, लेकिन हमको कुछ कहने-सुनने का उनको कोई अधिकार नहीं है। उस समय यदि हम होते तो अनर्थ हो जाता।

कौशिल्या अपनी मनोभिलाषा फलते-फूलते देखकर मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई। बार-बार आँखों को पोंछते हुए और हिचकियाँ भरते हुए उसने फिर कहा—तुम होते तो किसी को कुछ कहने-सुनने की हिम्मत ही कैसे पड़ती। तुम न थे इसीलिये तो जैसी मन में आयी सैकड़ों उचित और अनुचित सुनाईं। अब लोकनाथ यदि सोने के भी बनकर आवें तो भी उनका और उनकी स्त्री का मेरे साथ इस घर में निर्वाह नहीं हो सकता।

ओंकारनाथ—हमें तो इन सब बातों का कुछ पता न था और न तुमने कुछ कहा ही था किन्तु जब से हमने सुना है, हमारा जी जल रहा है। अब वे हमारे घर से जहाँ कल जाते हों, वहाँ आज चले जायँ।

कौशिल्या ने अनेक प्रकार की बातें करके ओंकारनाथ के हृदय को लोकनाथ और करुणा के बिलकुल विरुद्ध कर दिया। ओंकारनाथ कौशिल्या को बहुत मानते थे। वे बड़ी देर तक उससे बातें करते रहे। वे उसकी कही हुई बातों को जितना ही सोचते थे उतना ही लोकनाथ के प्रति उनके हृदय में शत्रु-भाव बढ़ता जाता था।

प्रातःकाल लोकनाथ की जब नींद खुली तो उसने देखा करुणा जगी हुई है, उसने प्यार के साथ पूछा—करुणा, तुम कितनी देर से जाग रही हो ?

दीर्घ निश्वास खींचकर करुणा ने कहा—थोड़ी देर से। मुझे आज अच्छी तरह से नींद नहीं आयी। रात में कई बार जगी, अनेक प्रकार की बातें सोचती रही। सोचा, तुमसे कुछ बातें करूँ लेकिन तुमको सोता हुआ देखकर चुप रही। फिर सो गयी।

किसी सुदूरवर्ती दुश्चिन्तना और उत्पीड़ा से करुणा के बाल-हृदय में एक प्रकार की वेदना हो रही थी। रह-रहकर उसका पेट मसोस रहा था। कुछ देर शांत रहकर लोकनाथ ने कहा—मैं बाहर जाने की बात सोच चुका हूँ और निश्चय कर चुका हूँ। तुम क्या सोचती हो ?

करुणा ने कहा—मैं तुम्हारी किसी बात का विरोध नहीं कर सकती। मैं स्त्री हूँ, स्त्री के हृदय में भय और कातरता ही अधिक होती है, कदाचित् इसी कारण मैं सोचती हूँ कि यदि तुम दादा से मिलो और उनसे बातें करो तो क्या अच्छा न होगा ?

लोकनाथ ने निर्भय होकर कहा—नहीं, अच्छा न होगा, मुझसे हो भी न सकेगा।

करुणा ने विनम्र होकर पूछा—ऐसा क्यों सोच रहे हो ?

'ऐसा सोचने का कारण है' लोकनाथ ने आवेश के साथ कहा—यह तो तुमने सुना ही होगा कि कल भावज ने किस प्रकार की बातें कही हैं। मैं उस समय बिना कुछ खाए पिए था। जो कुछ मेरी समझ में आया, उत्तर दिया। शाम को जब भाई जी आये, उनसे भावज ने जो मन में आया, कहा, लेकिन भाई जी ने मुझसे यह न पूछा कि क्या बात है ? आज तुम दोनों में किस बात की कहा-सुनी हुई ? इस बात से तो यह साफ़ ही है कि भावज ने जो कुछ भी किया, उनकी इच्छा से किया—उनके कहने पर किया; अब मैं उनसे किस तरह कहने-सुनने जाऊँ !

करुणा—हाँ यह ठीक है, दादा को तुम से सब बातें पूछनी चाहिए, लेकिन यदि किसी ने कुछ गलत बातें कह दीं और उनके प्रभाव से उन्होंने उस तरह न पूछकर, दूसरे ही ढङ्ग से पूछा तो क्या अपनी तरफ़ से कुछ कहने में हानि है ?

'हानि क्यों नहीं है' स्वाभिमान के साथ लोकनाथ ने कहा—मैं पतित नहीं हूँ—पतित बनना भी नहीं चाहता हूँ। उसमें हानि ही नहीं है, अपमान है।

करुणा—मेरी समझ में यह नहीं आता, जो अपना है, उससे अपमान कैसा। अपमान तो पराये से होता है। वे तुम्हारे भाई हैं, उन्होंने तुम्हारे लिए क्या न किया होगा, ऐसी दशा में यदि आज वे कुछ अनुचित भी करें, तो क्या उनकी पहली बातों का, उनकी सेवाओं का हमारे हृदय में स्थान न होना चाहिये ? मैं समझती हूँ यदि इन बातों को हम लोग सोच-विचार कर करेंगे तो ईश्वर हमारे पक्ष में होगा और वह हमारा कल्याण ही करेगा।

लोकनाथ—तुमको मालूम नहीं हैं, ये बातें अभी आज ही कल की नहीं हैं। बहुत दिन हो गये, इस प्रकार की बातों को मैं झेलता चला आता हूँ। हमारे साथ खाने-पीने में जो व्यवहार होता है, उसको क्या भाई जी जानते नहीं हैं, मैंने कभी-कभी कुछ कहा भी है परन्तु जब उसका कोई फल नहीं हुआ तो मैं चुप हो गया।

लोकनाथ चुप हो गया। करुणा चारपाई पर बैठी हुई, इन बातों को सुन रही थी और सोच रही थी। लोकनाथ ने फिर कहा—इसमें घबराने की कुछ बात नहीं है। पशु भी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, कुत्ते भी अपना पेट भर लेते हैं, तो

फिर हम तो मनुष्य हैं। हम अपने पेट के लिए भी कुछ न कर सकेंगे, यह मैं नहीं सोचता।

'कर क्यों नहीं सकते' करुणा ने धीरे-धीरे कहा—लेकिन देश-परदेश में जो निकल नहीं रहा, उसके लिए पहले कुछ कठिन होता है। मैं जब परदेश की बातों को सोचती हूँ तो मुझे जाने कैसा जान पड़ता है। अभी तो अपने घर में हो, यहाँ दस आदमियों से मेल है—व्यवहार है, परदेश में तुम्हारा कौन होगा। यहाँ पर तुमने नौकरी के लिए कोशिश की है, यदि वह ठीक होगयी तो फिर इससे अच्छा और हो क्या सकता है। इन बातों को सोच-विचार लेना अच्छा है।

लोकनाथ ने कुछ उत्तर न दिया;वह मन-ही-मन सोचने लगा, इतनी दुनियाँ नौकरी करती है, फिर मुझे कोई नौकरी न मिलेगी, यह कैसे होसकता है। यह होसकता है कि दस-पाँच दिन बाद में मिले; लेकिन मिलेगी क्यों नहीं। फिर नौकरी होजाने पर सुख से खायेंगे। सन्तोष के साथ रहेंगे। अपना घर होगा, करुणा हमारे साथ होगी, उस समय हम दुःखी किस बात में हो सकते हैं।

लोकनाथ ने कहा—हमने खूब सोच-विचार लिया है, तुम किसी बात की चिन्ता न करो। हाँ, हमारे सामने प्रश्न एक यह है कि चलने के लिए रुपयों का क्या प्रबन्ध होगा। जिनसे हमारा साथ है, वे इस योग्य नहीं हैं कि रुपये पैसे से हमारी सहायता करें। उसके लिए हमने एक बात सोची है अगर तुम पसन्द करो।

करुणा—मेरी पसन्द क्या है, इसको तुम्हें सोचना नहीं है, जो तुम करोगे, वही मुझे स्वीकार होगा। जो तुम्हारे लिए उचित होगा, वही मेरे लिए उचित होगा।

लोकनाथ—तुम जो अपने गले में सोने की जंजीर पहने हो, इसके बदले में हमें कुछ रुपये मिल सकते हैं, उन रुपयों से हम लोग बाहर चलेंगे और नौकरी होजाने पर तुमको इसी प्रकार की जंजीर फिर बनवा देंगे।

करुणा ने कहा—यदि यह जंजीर तुम्हारे काम आसके तो तुम इससे काम चलाओ। तुमने हमारे बाबू जी को नहीं देखा, यह उन्हीं की बनवाई हुई है। कलकत्ते में उन्होंने बनवाकर मुझे पहनाई थी। आज बाबू जी होते तो क्या न होता।

करुणा की बात सुनकर लोकनाथ ने कहा—अगर तुम्हारे बाबू जी बने होते तो तुम्हारा ब्याह हमारे साथ क्यों होता। बाबू जी किसी ऐसे स्थान पर तुम्हारा ब्याह करते, जहाँ तुम्हारे सुख का ठिकाना ही न होता। तुमको यह दरिद्रता न भोगनी पड़ती।

करुणा—मनुष्य के करने से क्या होता है। जो जिसको बदा होता है, वही उसको मिलता है, मनुष्य उसकी रचना मात्र करता है, परन्तु जो कुछ होता है उसका कर्त्ता ईश्वर है। जो जिसका है वही उसको मिलता है।

करुणा की इन बातों से लोकनाथ को एक क्षीण सुख का आभास-सा हुआ, उसने उसका अनुभव करते हुए कहा—करुणा तुम मेरी थी, इसीलिए तुम मुझे मिली हो?

करुणा ने लोकनाथ के स्वर में स्वर मिलाकर उत्तर दिया—हाँ, और तुम मेरे थे, इसीलिए तुम मुझे मिले हो।

लोकनाथ ने हँस दिया, करुणा के अधरों में भी हँसी की लजाती हुई आभा क्षण-भर के लिए आयी और चली गई।

सवेरा हो चुका था, करुणा उठकर नीचे चली गई। आज उससे घर में कोई बोला नहीं, कौशिल्या ने उसकी ओर सिर उठा

कर देखा भी नहीं। करुणा ने एक दो बात पूछी भी, परन्तु कौशिल्या ने कुछ उत्तर न दिया। करुणा को यह व्यवहार अच्छा न लगा। उसके मन में रह-रहकर ये भाव उठने लगे—मैंने इनका क्या बिगाड़ा है, मैंने तो कुछ कहा भी नहीं है, फिर मुझसे ये बोलती क्यों नहीं।

धीरे-धीरे सबेरे के नौ बज गए। करुणा घर का कुछ काम करने लगी। यह देखकर कौशिल्या ने ऊँचे स्वर से कहा—तुम मेरे घर का कोई काम न करो।

करुणा को यह सुनकर कुछ बुरा मालूम हुआ, परन्तु उसने अपने मन के भाव को बदलकर सरलता पूर्वक कहा—क्या यह मेरा घर नहीं है ? मैं घर का कोई काम क्यों न करूँ ?

कौशिल्या ने मुँह बनाकर और माथा सिकोड़कर उत्तर दिया—हाँ, तुम्हारा यह घर नहीं है, रात में यह सलाह हुई होगी कि घर में हिस्सा लगाओ। बाँट का झगड़ा करो।

करुणा ने तुरन्त कौशिल्या को शान्त करते हुए कहा—नहीं, तुम ऐसा न सोचो ! मैंने इस विचार से कोई बात नहीं कही। अगर मैं जानती कि तुम यह सोचोगी तो मैं कुछ न कहती।

"मैं पागल नहीं हूँ, मैं सब समझती हूँ, तुम कहोगी भी तो कौन-सा मुँह लेकर कहोगी।" कहती हुई कौशिल्या घर का काम-काज करने लगी।

करुणा ने कुछ उत्तर न दिया। वह कुछ देर तक मकान में ठहरी और फिर ऊपर चली गयी। लोकनाथ वहाँ पर न था। वह छत पर इधर-उधर टहलकर सोचने लगी—ऐसा मालूम होता है जो होनहार है, वह होकर ही रहेगा। मैं जो चाहती हूँ, वह

ईश्वर को मंजूर नहीं है, शायद मेरे भाग्य में अभी कुछ मुसीबतों का देखना और बदा है।

हृदय की बढ़ती हुई अस्थिरता में उसने फिर सोचा—यदि यही बात है और ईश्वर की यही मर्जी है तो मुझे उसके लिए न रोना चाहिए। जब ईश्वर ही ऐसा चाहता है तो फिर मुझे प्रसन्नता के साथ उनको अपने सिर पर लेना चाहिए, आखिर उनकी भी तो कुछ सीमा होगी। किसी दिन ईश्वर हमें भी सुखी करेगा।

इसी समय लोकनाथ तेज़ी के साथ ऊपर आया और करुणा को बुलाकर कहा—मैं बाज़ार से गरम पूड़ी ले आया हूँ, थोड़ी सी खालो और फिर कुछ और बातें सोचें।

करुणा बहुत भूखी थी, उसका पेट भूख के मारे जल रहा था। उसने कभी भूख का कष्ट सहा न था। वह लोकनाथ के साथ खाने को बैठ गयी। करुणा को वह पूड़ियाँ बड़ी अच्छी लगीं। लोकनाथ ने कहा—करुणा, आज हम और तुम दोनों साथ बैठकर खा रहे हैं।

करुणा ने गम्भीर होकर लोकनाथ की ओर देखा और मुस्कराकर वह फिर खाने लगी। खा-पीकर जिस समय लोकनाथ बैठा, उस समय करुणा ने कहा—क्या परदेश चलना ही निश्चय किया है ?

"अवश्य" कहकर लोकनाथ ने उत्तर दिया—इस घर के सुख से परदेश के दुख को मैं अधिक अच्छा समझूँगा। तुम अपने हृदय को कड़ा करो। चिन्ताओं को छोड़ दो।

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। कुछ देर के बाद, लोकनाथ छत से उतरकर फिर चला गया और रायबरेली छोड़कर बाहर जाने की तैयारी करने लगा। उसके कई एक साथी थे।

एक-एक के पास वह मिलने लगा। सभी ने लोकनाथ के एकाएक रायबरेली छोड़ देने की बात सुनकर आश्चर्य किया। इसके सम्बन्ध में किसी ने कुछ पूछा और किसी ने कुछ। लोकनाथ ने सभी को उत्तर दिये और घर के झगड़े को संक्षेप में बताकर उसने रुपये-पैसे का प्रबन्ध किया।

करुणा के गले की जो जंजीर लोकनाथ ले आया था, वह सोने की थी और बहुत अच्छी थी। उसको लेकर वह सराफ़े में गया। जिसको उसने दिखाया उसी ने उसके ले लेने का विचार किया। उसकी बनावट देखकर कितनों ही ने उस जंजीर की प्रशंसा की।

लोकनाथ जंजीर को बेचकर जब चालीस रुपये लेकर चला तो उसके हृदय में एक प्रकार की पीड़ा-सी हुई, उसके बाद उसने मन-ही-मन सोचा, जेवर इसीलिए होता है कि उससे समय पर सहायता मिले। यदि समय आया और ईश्वर ने सहायता की तो करुणा के लिए इससे दूने दामों की जंजीर बनवाऊँगा।

लोकनाथ ने घर आकर करुणा के हाथ में चालीस रुपये दे दिये। करुणा ने गिनकर पूछा—ये रुपये जंजीर के हैं?

लोकनाथ—हाँ।

करुणा—क्या किया, गिरवी रखा या बेच दिया?

लोकनाथ—गिरवी रखने से कोई लाभ न था, उससे इतने रुपये मिलते भी नहीं, यही सोचकर हमने उसे बेच दिया।

करुणा—गिरवी करने से फिर उसको उठाने का मौका रहता है, बेच देने से तो सदा के लिए वह चीज चली जाती है।

"हाँ यह तो ठीक है" लोकनाथ ने कहा—जब ईश्वर देगा तो उससे भी अच्छी जंजीर बनवाई जा सकती है।

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। लोकनाथ अपने चलने की तैयारी करने लगा। करुणा का हृदय बहुत कोमल था, उसने नीचे आकर कौशिल्या से बातें करने का मौक़ा ढूँढ़ा; परन्तु कौशिल्या इसके लिए तैयार न थी। उसके इस उपेक्षा-पूर्ण व्यवहार को देख-कर करुणा का साहस फिर बात करने के लिए न हुआ।

घर में खाना-पीना बन्द किये हुए लोकनाथ को तीन दिन पूरे बीत गये। इस बीच में ओंकारनाथ ने एक बात भी लोकनाथ से न पूछी। लोकनाथ ने अपनी सब तैयारी करली और चौथे दिन घर छोड़कर वह परदेश के लिए रवाना होने लगा। करुणा जब घर से जाने लगी, तो उसने कौशिल्या के पास जाकर कहा—जाती हूँ, मुझसे जो अपराध हुए हों उनका कुछ ख्याल न करना।

कौशिल्या ने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। घर से बाहर आते ही दरवाज़े पर ओंकारनाथ खड़े थे। करुणा ने उनके समीप जाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—आशीर्वाद दीजिए कि हमलोग सुखी रहें।

ओंकारनाथ का हृदय भर आया, आँखों में आँसू आगए। उनके मुँह से निकल गया—लोकनाथ, तुमने अच्छा न किया!

लोकनाथ पास ही खड़ा था, उसने कहा—अच्छा ही है; ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।

एक इक्के पर बैठकर, लोकनाथ करुणा के साथ स्टेशन की ओर चल हुआ। लोकनाथ जिस समय घर से रवाना होरहा था, कितने ही आदमी ओंकारनाथ के दरवाज़े आकर इकट्ठे होगये थे। आस-पास के घरों की स्त्रियाँ करुणा को देखने के लिए उत्सुक हो रही थीं। करुणा के चले जाने पर वे तरह-तरह की बातें करने लगीं।

तेरहवाँ परिच्छेद

लोकनाथ को कानपुर आए हुए एक सप्ताह से अधिक हो गया। उसने अपने रहने के लिए पटकापुर में पाँच रुपये मासिक किराए का एक घर ले लिया है। लोकनाथ करुणा के साथ उसी घर में रहा करता है।

लोकनाथ ने किराये का जो घर लिया है वह घर उसके रायबरेली वाले घर की भाँति नहीं है। यह पक्का मकान है, साफ़-सुथरी जगह है; स्थान थोड़ा है परन्तु जितना भी है, काम का है। करुणा इसी घर में रहा करती है, यहाँ पर उसको कौशिल्या का डर नहीं है। उसने अपनी छोटी-सी गृहस्थी बना ली है। आवश्यकता के अनुसार कुछ बरतन भी खरीद लिया है।

नित्य खाना खा-पीकर लोकनाथ शहर में निकल जाता है। वह कितने ही आदमियों से मिलकर अपने लिए नौकरी खोजता है। जहाँ जो बताता है; वहाँ जाता है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर होकर जब वह लौटता है तो जो कुछ वह प्रयत्न करता है और जो कुछ उसका नतीजा होता है, लोकनाथ करुणा के पास बैठकर सब समझाता है।

एक दिन लोकनाथ को लौटने में देर हो गयी। करुणा घर में बैठी हुई उसका रास्ता देख रही थी। सायंकाल के छः बज गये थे। जाड़े के दिन थे, पौष का महीना था, करुणा रह-रह कर बाहर की ओर देखती थी। उसका मकान एक साधारण सड़क के ऊपर था। मकान के आगे से इक्का, मोटर, साइकिल, ताँगे सुबह से रात तक निकला करते थे। लोकनाथ के लौटने में जितनी

ही देर होती जाती थी, उतनी ही उसकी चिन्ता बढ़ती जाती थी। वह बार-बार सोचती थी, देर हो जाने का आज कारण क्या है ? इतनी देर तक तो वे कभी न रुकते थे, रात में काम ही क्या हो सकता है !

धीरे-धीरे आठ बजने का समय आया, लेकिन लोकनाथ न लौटा। करुणा ने अपना दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया था और भीतर से एक चारपाई पर बैठी हुई रास्ता देख रही थी। मकान के सामने जब किसी के निकलने की आहट होती तो वह चौंक कर सड़क पर होने वाली आहट को पहचानती और उसके बाद फिर वह शान्त हो जाती। लोकनाथ पाँच बजे तक रोज़ घर लौट कर आ जाया करता था, लेकिन आज अभी तक नहीं लौटा। करुणा के हृदय में अनेक प्रकार की दुश्चिन्तायें उत्पन्न होने लगीं।

कुछ समय और बीता। एकाएक लोकनाथ ने दरवाजे पर आकर आवाज़ दी। करुणा को आवाज़ पहचानने में देर न लगी। तेज़ी के साथ उठकर उसने दरवाज़ा खोला। लोकनाथ के भीतर आते ही करुणा ने कातर कण्ठ से पूछा—अभी तक कहाँ रहे ?

लोकनाथ ने हँसते हुए कहा—क्यों, क्या बहुत देर होगई।

'आठ बज चुके हैं, अभी देर नहीं हुई है ?' करुणा ने कहा।

लोकनाथ भीतर जाकर एक चारपाई पर बैठ गया। चारपाई बिछी हुई थी और उसके एक किनारे पर रज़ाई रक्खी थी। लोकनाथ ने रज़ाई को उठाकर ओढ़ते हुए कहा—आठ बज गये हैं तो क्या हुआ। शहरों में इतनी रात को रात नहीं कहते। तुम तो भीतर बैठी हो, निकलकर देखो तो मालूम हो, दिन को इतनी चहल-पहल क्या हो सकती है।

करुणा ने कहा—मैं मारे चिंता के मर रही थी और आप

शहर की चहल-पहल देख रहे थे। मैं क्या जानती थी कि शहर की उस चहल-पहल के आगे तुमको घर की याद ही न आयेगी।

लोकनाथ को हँसी आगयी। उसने कहा—चहल-पहल मेरे लिये नहीं थी। मैंने चहल-पहल में इतनी रात नहीं बिताई। तुम इस बात का........।

करुणा ने बीच ही में बात काटकर कहा—जाने दो, बातें न बनाओ। तुम्हें बातें बहुत आती हैं। जब घर आए तो इस प्रकार बातें करने लगे।

लोकनाथ—नहीं, नहीं, मैं बातें नहीं बनाता। झूठमूठ कहकर तुमको प्रसन्न नहीं करना चाहता। जो बात है, वही कहकर तुमको विश्वास दिलाना चाहता हूँ।

करुणा ने सरलतापूर्वक पूछा—क्या?

लोकनाथ—वही तो बता रहा हूँ। तुम क्या समझी थीं कि मैं वहीं यों ही घूम रहा हूँ?

करुणा—मैं यह कुछ न समझी थी। इतने दिन यहाँ आये हो चुके, पाँच बजे के बाद तुम घर से बाहर न रहते थे। आज जब छः बज गये तो मुझे कुछ होने लगी। सात बज जाने के बाद मुझे कुछ घबराहट सी मालूम होने लगी।

लोकनाथ ने हँसकर पूछा—आखिर घबराने की क्या बात थी?

करुणा—जी हाँ, घबराने की क्या बात थी। आप तो मजे में शहर घूमते रहे। आपको क्या मालूम किस पर क्या गुज़रती है।

लोकनाथ—नहीं नहीं, मैं शहर नहीं घूमता रहा। बिना काम मुझे इतनी देर नहीं हुई।

"मैं तुम्हारी एक न मानूँगी", करुणा ने कहा—भला रात में क्या काम था, जो इतनी देर तक करते रहे?

लोकनाथ—वही तो बताता हूँ, जब तुम सुन लोगी तब तुमको विश्वास हो जायगा।

करुणा चुपचाप सुनती रही। लोकनाथ ने फिर कहा—आज दो-तीन दिनों से मैं एक आदमी से मिलने की कोशिश कर रहा था। वह आदमी सात बजे के बाद शाम को मिलता है, इसलिए, मुझे देर होगयी।

करुणा ने पूछा—वह आदमी कौन है? उससे क्या काम था। जिसके लिए इतना ठहरना पड़ा।

लोकनाथ—वह आदमी एक आफ़िस का मैनेजर है। मुझे एक आदमी से मालूम हुआ कि उस आफ़िस में एक क्लर्क की जगह खाली है। इसीलिए मैं मैनेजर के पास गया था।

लोकनाथ कहता जाता था और करुणा की ओर देखता जाता था। करुणा बड़ी देर से मैनेजर की बात जानने के लिए उत्सुक होरही थी। लोकनाथ को रुक-रुककर कहते देखकर करुणा ने कहा—तो फिर, बात क्या हुई?

लोकनाथ—जब मैं मैनेजर के पास गया था तो सोचता था कि उससे मेरी कुछ जान-पहचान नहीं है, मैं जब मिलूँगा तो उससे क्या कहूँगा। लेकिन मिलने पर मालूम हुआ कि वह बहुत अच्छा आदमी है। कुछ देर तक बातें करने के बाद उसने कहा कि परसों तुम हमारे दफ़्तर में आओ।

करुणा ने प्रसन्न होकर पूछा—क्या तुम विश्वास करते हो कि नौकरी मिल जायगी?

लोकनाथ—हाँ, मैं विश्वास करता हूँ। मैनेजर ने सब बातें कह दी हैं लेकिन नौकरी स्थायी नहीं है।

करुणा ने उत्सुकता के साथ पूछा—कितने दिन के लिए है?

लोकनाथ—यह तो मुझे ठीक नहीं मालूम, लेकिन शायद दो-तीन महीने की जरूर है ।

करुणा—और वेतन क्या मिलेगा ?

लोकनाथ—वेतन के सम्बन्ध में यद्यपि मैंने कुछ पूछा नहीं था फिर भी मैनेजर ने तीस रुपए कहे हैं ।

तीस रुपये का नाम सुनकर करुणा को सन्तोष हुआ । उसने कहा—ईश्वर का भरोसा है, वही हमारी सहायता करेगा ।

कुछ देर तक दोनों शान्त रहे । उसके बाद करुणा ने कहा—खाना बना रक्खा है, भूखे होगे, चलो खा लो ।

लोकनाथ ने करुणा की ओर देखकर कहा—भूख थी तो, परन्तु अब नहीं रही ।

करुणा ने विस्मय के साथ पूछा—क्यों, अब क्यों नहीं रही ?

लोकनाथ ने कहा—हाँ, अब नहीं रही । जब तुम मेरे पास बैठती हो और मैं तुमको अपनी आँखों से देखता हूँ तो मेरी भूख-प्यास न जाने कहाँ चली जाती है !

करुणा ने हँसकर अपना मुँह अपने दोनों हाथों से छिपा लिया और क्षण-भर के बाद कहा—अच्छा चलो, अब खाना खा लो ।

करुणा के इस घर में छोटी-सी रसोई थी । लोकनाथ खाने के लिए तैयार हुआ । करुणा अपने क्षीण प्रकाश के दीपक को लेकर लोकनाथ को खाना खिलाने चली गयी ।

मैनेजर की आज्ञानुसार लोकनाथ तीसरे दिन उसके आफिस पहुँचा । उस समय मैनेजर वहाँ न था । लोकनाथ बड़ी देरी तक बैठकर उसका रास्ता देखता रहा । कुछ देर के बाद मैनेजर आ गया और उसने लोकनाथ से कुछ बातें कीं ।

मैनेजर ने लोकनाथ को कुछ काम करने के लिए दिया और एक घन्टे के बाद उसने उस काम को देखा। उसके बाद उसने लोकनाथ को अपने यहाँ काम करने के लिए रख लिया। उस दिन लोकनाथ काम करता रहा और पाँच बजने पर जब आफिस खतम हुआ तो लोकनाथ अपने घर के लिए रवाना हुआ। इस समय लोकनाथ की प्रसन्नता का कुछ ठिकाना न था। उसका घर बहुत दूर न था फिर भी लोकनाथ जल्दी से जल्दी घर पहुँचने की कोशिश कर रहा था। जिस समय वह घर पहुँचा और दरवाजा खोलकर भीतर गया, उस समय प्रसन्नता के भाव उसके मुँह पर अपने आप फूटे निकलते थे। करुणा के पूछने पर लोकनाथ ने नौकरी ठीक हो जाने की बात बताई और उसके बाद कहा—तीन महीने के लिए काम है इसके बाद फिर कुछ और सोचना होगा।

करुणा ने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—जिसने अभी प्रबन्ध किया है वही तीन महीने के बाद भी प्रबन्ध करेगा। वह बड़ा दयालु है, यदि हम लोग उस पर सदा विश्वास रखें तो वह नित्य हमारी सहायता करने वाला है।

उस दिन से सुख और सन्तोष के साथ करुणा के दिन बीतने लगे। लोकनाथ नित्य खा-पीकर अपने काम पर जाता था और काम से लौटने पर फिर अपने घर आता था। सायंकाल करुणा के पास बैठ कर जब वह बातें करता था तो करुणा अपने लड़कपन की उसको बातें सुनाती थी और करुणा जब कह चुकती थी तो लोकनाथ अपने शैशव काल की उससे कथायें कहता था।

एक दिन लोकनाथ घूमने जा रहा था। छुट्टी का दिन था,

दोपहर के तीन बज चुके थे, करुणा तैयार हुई। सुन्दर वस्त्रों से आभूषित होकर, उसने शीशा देखा और उसके बाद उसने अपने बालों को सवाँरा। थोड़ी देर में करुणा के साथ लोकनाथ घर से निकल पड़ा।

लोकनाथ प्रयाग-नारायण के मन्दिर की ओर चल रहा था। रास्ते में एक विशाल भवन के सामने अनाथ और ग़रीब स्त्री-पुरुषों का एक समूह दिखाई पड़ा। लोकनाथ चलते-चलते जब उनके सामने पहुँचा तो करुणा ने उन अनाथों को देखा, वह आगे चलती जाती थी और उन लोगों की ओर देखती जाती थी।

उन अनाथों में बहुत सी स्त्रियाँ थीं जिनके सूखे शरीर में रक्त का पता न था। उनमें से कितनी ही स्त्रियाँ अपनी गोदों में जीर्ण-शीर्ण बच्चों को लिए हुए दूध पिला रही थीं। बच्चों के शरीर बिलकुल नङ्गे थे, उनके दुबले-पतले शरीर बड़े भयानक दिखाई पड़ते थे। उनकी माताएँ अपने फटे-पुराने और मैले कपड़ों से अपने अंगों को ढकने के साथ-साथ अपने बच्चों को भी ढकने का प्रयत्न करती थीं।

उसी समय करुणा की दृष्टि उन जवान लड़कियों पर पड़ी जो इन्हीं भिखमंगों के बीच में बैठ कर भिखारिणी बन रही थीं। उनमें से कुछ पन्द्रह-पन्द्रह, सोलह-सोलह वर्ष की और कुछ बीस वर्ष से भी अधिक की होंगी। करुणा ने उनको ध्यान से देखा। वे दीन थीं, दुखिया थीं। अन्न-कष्ट से पीड़ित थीं; फिर भी उनके शरीरों में बाल सुलभ सौन्दर्य था। उनके बदन मैले और गन्दे थे परन्तु उनमें स्वास्थ्य और यौवन था। उनके सुन्दर मुख और अपरिष्कृत अंग-प्रत्यंग में छिपे हुए यौवन को देखते ही करुणा के हृदय में अनेक प्रकार के भाव उठने लगे।

लोकनाथ चलता हुआ जब प्रयाग-नारायण के मन्दिर के समीप पहुँचा तो वह अचानक चौंक पड़ा। उसने देखा करुणा नहीं है। घबरा कर तेज़ी के साथ अपने आस-पास देखा, आगे-पीछे देखा परन्तु करुणा कहीं दिखाई न पड़ी। लोकनाथ का हृदय घबरा उठा। उसी घबराहट में उसके मुँह से निकल पड़ा, करुणा, करुणा! लेकिन कहीं से करुणा के बोलने की आवाज़ न आयी।

लोकनाथ का हृदय चिन्ता और भय से उद्विग्न हो उठा। वह बार-बार सोचने लगा, करुणा कहाँ चली गयी। कभी वह कुछ पीछे चलता और फिर थोड़ी ही देर में आगे बढ़ कर करुणा, करुणा कह कर पुकारता; परन्तु करुणा कहीं से न बोलती। इसी अवस्था में लगभग आधा घन्टा बीत गया। कुछ न सूझ पड़ने पर जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते से वह लौटा। आगे चलता हुआ लोकनाथ अपने दाएँ-बाएँ भी देखता जाता था। कुछ देर में उसे दूर से ही सड़क के एक किनारे पर उन भिखारियों के निकट करुणा दिखाई पड़ी। देखते ही वह तेज़ी के साथ दौड़ा और पास पहुँच कर कम्पित स्वर में घबराहट के साथ उसने कहा—करुणा तुम यहाँ हो और मैं बहुत दूर आगे निकल गया था।

करुणा ने चौंककर लोकनाथ की ओर देखा और कहा—हाँ जब तुम कुछ आगे निकल गये तब मुझे भी मालूम हुआ। ऐसा मालूम होता है कि जब मैं यहाँ पर पहुँची हूँ तब मेरी चाल धीमी पड़ गयी थी, शायद मैं कुछ रुक भी गयी थी। मेरा ध्यान इन लोगों की ओर था, इसी बीच में तुम निकल गये। कुछ ही देर में जब मैंने तुम्हारी ओर देखा तो तुम मुझे दिखाई न पड़े। ऐसी [illegible]ा में मैं यहीं पर रुक गयी। तुम आगे किधर चले गये, यह

मुझे मालूम न हुआ, इसलिए मैं यहीं रुककर यह सोचने लगी कि थोड़ी ही देर में जब तुम मुझे न पाओगे तो इसी रास्ते से लौटोगे।

लोकनाथ करुणा के साथ फिर मन्दिर की ओर चलने लगा। चलते-चलते उसने कहा—और अगर मैं इस रास्ते से न लौटता तो?

करुणा—तो मैं लौट जाती।

लोकनाथ—तुमको घर मिल जाता?

करुणा—क्यों, घर मिलने में क्या था! कानपुर में निकलते-पैठते और घूमते हुए दो महीने हो रहे हैं, अब तो कहीं से भी मैं बिना पूछे-बताये अपने घर पहुँच सकती हूँ।

लोकनाथ ने कुछ देर चुप रहकर कहा—यह तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है। रास्ता चलते हुए कहीं रुकना न चाहिये, फिर भला उन भिखमंगों के पास खड़े होने की क्या जरूरत थी।

करुणा—मैं जान बूझकर नहीं खड़ी हो गयी थी और न मैं यही समझती थी कि तुम इतनी देर में निकल जाओगे।

लोकनाथ ने कुछ आवेश मिश्रित स्वर में कहा—हाँ, तुमने तो इतना कह दिया पर जब मैंने मंदिर के पास पहुँच कर तुमको न देखा तो उस समय मेरी क्या दशा हो गयी, इसको तुम क्या समझो।

करुणा—यह तो ठीक है परन्तु जब ऐसा समय आवे तो घबराने की क्या बात थी, तुमको लौटकर घर चला जाना चाहिये। मैं यदि छुट भी जाऊँगी तो घर पहुँच जाऊँगी।

लोकनाथ—हाँ, तुम्हारे लिये तो यह मामूली बात है?

करुणा—मामूली बात तो नहीं किन्तु यदि इस प्रकार का

संयोग पड़ जाय तो मुझे उसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं मालूम पड़ती।

लोकनाथ ने कुछ उत्तर न दिया। थोड़ी देर में मन्दिर को पार करके दोनों बाहर निकले। यहाँ पर गङ्गा के रास्ते में सड़क के दोनों ओर लङ्गड़े और लूले बैठे हुए थे। उनके निकट पहुँच कर लोकनाथ ने कहा—यहाँ अब तुम फिर छूट जाओगी?

लोकनाथ ने यद्यपि सहज ही यह बात कही थी परन्तु उसके स्वर में आवेश था, व्यंग था और कुछ ऐसा भाव था जिससे मालूम होता था कि वह इन बातों को पसन्द नहीं करता। करुणा ने कहा—नहीं, मैं छूट क्यों जाऊँगी।

लोकनाथ—अभी वहाँ क्यों छूट गयी थी?

करुणा—संयोग की बात थी।

लोकनाथ—क्या वह संयोग यहाँ नहीं हो सकता?

लोकनाथ की बात सुनकर करुणा को हँसी आगयी, उसने उस बात को बदलकर अत्यन्त विनीत भाव से पूछा—तुम को इन लँगड़े-लूलों को देखकर दया नहीं आती?

लोकनाथ—आती क्यों नहीं। इन सब को लिवा लो और अपने घर में रखो चलकर।

इस व्यंग को सुनकर करुणा ने लोकनाथ की ओर देखा और कहा—इनको लिवाकर घर में रखने की बात नहीं है, मैं इस योग्य भी नहीं हूँ। जिन्हें ईश्वर देता है वे इनका भी ख्याल रखते हैं।

लोकनाथ—जिस ईश्वर ने इनको पैदा किया है जब उसको इन पर दया नहीं आती तो मनुष्य इन पर दया क्या कर [सक]ता है!

करुणा—क्षण-भर के लिए गंभीर और शान्त हो गयी; उसके बाद उसने कहा—कदाचित् ईश्वर का अभिप्राय कुछ और ही है।

लोकनाथ—क्या?

करुणा—मनुष्य अपनी आपद विपद में दूसरे से सहायता पाने की इच्छा रखता है। अपने कष्ट-दुर्दिनों में दूसरे की उदारता का वह भिखारी बन जाता है। जिन मनुष्यों की यह अवस्था है, वे दूसरों को दुख और दरिद्रता में देखकर क्या करते हैं, शायद ईश्वर यह जानना चाहता है। इसीलिए उसने इन लङ्गड़ों-लूलों, अन्धों-गूंगों की सृष्टि की है।

लोकनाथ की समझ में ये बातें न आयीं। वह आगे चलता जाता था, करुणा की बातें भी सुनता जाता था और इधर-उधर देखता भी जाता था। इस समय वह ठंढी सड़क पर पहुँच चुका था। लोकनाथ और करुणा—दोनों फूलबाग़ की ओर चल रहे थे। करुणा की बात समाप्त होने पर लोकनाथ ने कहा—इसके लिए तुम अकेले आया करो।

लोकनाथ की बातों के इन भावों को करुणा पहचानती थी वह अपने मन के भावों को भी रोक न सकती थी। उसने कहा—अकेले की बात नहीं है, मैं इन लोगों में क्या देखती हूँ, यदि यह मैं तुम्हें सुनाऊँ तो तुम न जाने क्या सोचने लगो।

लोकनाथ—नहीं, मैं कुछ सोचना नहीं चाहता। तुम मुझे सुनाओ नहीं, अपने पास रखो।

करुणा ने वहाँ रुककर जो कुछ देखा था, उसको कहने के लिए उसका पेट फूला रहा था! उन दरिद्रों के प्रति लोकनाथ के निश्चेष्ट भावों को देखकर भी करुणा ने कहा—उन दरिद्रों में कुछ लोगों को देखकर, कभी-कभी उन लोगों से बातें करने को जी

चाहता है। वे लोग कैसे रहते हैं, क्या सोचते हैं, उनका सुख और दुख कैसा होता है, उनके जीवन की इच्छाएँ-अभिलाषाएँ क्या होती हैं—इन सभी बातों को जानने के लिए मेरी कभी-कभी बड़ी इच्छा हो आती है।

लोकनाथ ने हँसकर कहा—मैं सोचता हूँ, कहीं तुम्हारा दिमाग़ खराब न हो जाय।

करुणा—क्या दिमाग़ खराब होने के यही लक्षण हैं ?

लोकनाथ—और नहीं तो क्या।

इस समय लोकनाथ फूलबाग़ में पहुँच चुका था। वहाँ पर घूम-घूमकर करुणा आस-पास की इमारतों के सम्बन्ध में लोकनाथ से पूछती जाती थी और लोकनाथ जिसके सम्बन्ध में जो कुछ जानता था, बताता जाता था। थोड़ी देर के बाद करुणा ने एक पड़ी हुई बेञ्च की तरफ़ संकेत किया और कहा—चलो उसमें थोड़ी देर बैठ जाँय।

लोकनाथ उसी तरफ़ चला और वहाँ जाकर उस पर बैठ गया। करुणा भी उसमें एक ओर बैठ गयी। सन्ध्याकाल का समय था, शहर के अनेक आदमी वहाँ आकर इधर-उधर टहल रहे थे। उनमें से कितने ही इधर-उधर पड़ी हुई बेञ्चों पर बैठे हुए थे। कई एक हिन्दुस्तानी नौकरानियाँ साहबों के छोटे-छोटे बच्चों को लेकर वहीं पर घुमा रही थीं। तरह-तरह के दृश्य देखकर करुणा का हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। उसी समय एक काली-काली नौकरानी, अंग्रेज के एक बच्चे की उँगली पकड़े हुए उधर आ निकली। नौकरानी की अवस्था तीस वर्ष के लगभग होगी। ह बहुत साफ़ और उज्ज्वल कपड़े पहने थी। करुणा ने अपनी

उँगली का संकेत करके उस नौकरानी को अपने पास बुलाया। उसके आ जाने पर करुणा ने पूछा—यह किसका लड़का है ?

नौकरानी—साहब का।

करुणा—साहब क्या काम करते हैं ?

नौकरानी—साहब सरकारी बैंक के मैनेजर हैं।

करुणा ने बच्चे की ओर संकेत करके पूछा—यह बोलता है ?

नौकरानी—जी हाँ, बोलता क्यों नहीं।

करुणा ने अंग्रेजी में पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने कुछ भी उत्तर न दिया और करुणा की बात पर बिना कुछ ध्यान दिए इधर-उधर देखने लगा। नौकरानी ने यह देखकर कहा—आपको शर्म करता है। यह कहकर नौकरानी ने उस बच्चे से पूछा—बेबो, तुम्हारा नाम क्या है ?

बच्चे ने सरलता-पूर्वक उसकी ओर देखकर कहा—फिलिप।

बच्चे के कहने का ढङ्ग बड़ा सुन्दर था। उसकी आवाज और उसका उच्चारण हम लोगों की तरह न था। करुणा उस बच्चे को देखकर मुस्कराने लगी। नौकरानी उस बच्चे को लेकर चली गयी। करुणा कुछ देर तक उस बच्चे की ओर देखती रही। एकाएक लोकनाथ ने जोर के साथ पुकारा—बाबू शिवदयाल, बाबू शिवदयाल।

लोकनाथ के पुकारने पर एक अधेड़ आदमी हाथ में साइकिल लिए हुए लोकनाथ की ओर आया और पास आकर उसने पूछा—कहिए लोकनाथ जी, क्या होरहा है ?

लोकनाथ—कुछ नहीं, यों ही घूमने घामने निकल आया था। कहिए आप कहाँ ?

शिवदयाल ने एक बार करुणा की ओर देखा और फिर

लोकनाथ को उत्तर दिया—आज छुट्टी थी ही, मैं भी घूमता घामता इधर आ निकला।

लोकनाथ ने कुछ कहना चाहा, उसी समय शिवदयाल ने करुणा की ओर देखकर पूछा—आप······आपकी धर्मपत्नी हैं ?

लोकनाथ—जी हाँ।

करुणा के मुख को बार-बार देखते हुये शिवदयाल ने कहा—बड़ी खुशी है। आपके दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

शिवदयाल की बात को सुनकर करुणा ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। वह करुणा की ओर ध्यान से देख रहा था। करुणा ने सिर नीचा कर लिया।

शिवदयाल ने उसके बाद लोकनाथ की ओर देखते हुए पूछा—और कहिये बाबू लोकनाथ, क्या हाल-चाल है—आपका काम मजे में चल रहा है न ?

लोकनाथ—जी हाँ, अभी तो चल रहा है लेकिन·····।

शिवदयाल ने बीच में ही बात काटकर कहा—'हमारे मैनेजर साहब बहुत भले आदमी हैं अगर कोई वैसी बात मालूम हो तो मुझसे कहिएगा। मैनेजर साहब से मैं कह सुन दूँगा। सब ठीक हो जायगा।' कहते हुए शिवदयाल ने अपने बड़े-बड़े नेत्रों को फाड़-कर करुणा के मुख की ओर देखा। करुणा ने अपना सिर झुका लिया और वह नीचे देखने लगी।

शिवदयाल ने लोकनाथ की ओर देखते हुए कहा—आप तो·····आपतो शायद पटकापुर में········रहते हैं ?

लोकनाथ—जी हाँ, मैं पटकापुर में रहता हूँ।

शिवदयाल—अच्छा, किस स्थान पर ?

लोकनाथ—पटकापुर में जो जैनियों का एक बहुत बड़ा मन्दिर है, बिलकुल उसके बग़ल में।

शिवदयाल ने तेज़ी के साथ करुणा के मुख को एक बार फिर देखा और कहा—अच्छा, अगर हो सका तो किसी दिन आप लोगों के दर्शन करूँगा। अब मैं चलता हूँ।

लोकनाथ ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। शिवदयाल ने सिर झुकाते हुये करुणा की ओर देखा और साइकिल लिए हुए वहाँ से चल हुआ। उसके कुछ दूर निकल जाने पर करुणा ने लोकनाथ से पूछा—यह कौन था?

लोकनाथ—ये, ये हमारे आफ़िस के एक बाबू हैं, इनका वहाँ पर बड़ा प्रभाव है। प्रायः मैनेजर साहब बड़ी देर तक इनसे बातें किया करते हैं।

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। कुछ देर चुप रह कर उसने इधर-उधर देखा और फिर कहा—बड़ी देर हो गई है अब घर चलो।

लोकनाथ, करुणा के साथ फूलबाग़ से अपने घर की ओर चल पड़ा।

चौदहवाँ परिच्छेद

शिवदयाल शाम को भोजन कर चुके थे। वे बैठ कर पान लगा रहे थे, उसी समय दरवाज़े पर किसी के बुलाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। घर के किसी लड़के ने कहा—कोई बुला रहा है।

लेकिन शिवदयाल ने इसकी कुछ भी परवा न की। जब वे पान लगा कर खा चुके तो मकान के छज्जे पर जाकर सड़क की ओर देखा और पूछा, कौन साहब हैं?

नीचे से लोकनाथ ने कहा—बुलाते-बुलाते थक गया, अब आप पूछ रहे हैं, कौन साहब हैं। अरे भाई क्या कर रहे हो, नीचे तो आओ।

शिवदयाल लपकते हुए नीचे आये और कमरे का दरवाज़ा खोलते हुए कहने लगे—दफ़्तर से आते ही खाना खाने बैठ गया, भूख लग रही थी, आज ज़रा दोपहर को कम खाया था। खाना खाकर पान लगा रहा था उसी समय आपकी आवाज़ सुनाई पड़ी। अच्छा कहिए आप खा-पीकर आए हैं?

लोकनाथ—जी हाँ, मैं तो खा-पीकर आया हूँ।

शिवदयाल—अगर खाकर न आये हों तो बता दीजिएगा। तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं है, यह तो आपका घर है।

लोकनाथ—मैं घर से खाकर आ रहा हूँ नहीं तो उसमें संकोच क्या था।

कमरा खोलकर शिवदयाल भीतर गये और लालटेन को जाकर एक चारपाई पर बैठ गये। लोकनाथ भी उसी पर बैठ

गया। शिवदयाल ने कहा—आप ने हमारे बाबू साहब को देखा है ?

लोकनाथ—कौन बाबू साहब ?

शिवदयाल—मछली बाजार में बाबू मोतीचन्द रहते हैं। लखपती आदमी हैं। हमसे बड़ी मित्रता है। उनमें सबसे बड़ी अच्छी बात यह है कि इतने बड़े आदमी होने पर भी उनको जरा भी अभिमान नहीं है। उनकी बातों को सुनकर आप यह नहीं सोच सकते कि यह इतने बड़े आदमी हैं। अगर आपकी तबीयत हो तो चलिए उनसे आपकी मुलाकात करा लावें।

लोकनाथ ने हँसकर कहा—मेरी मुलाक़ात, इतने बड़े आदमी से मेरी भला क्या मुलकात हो सकती !

शिवदयाल ने तेजी के साथ उत्तर दिया--मैंने जैसा आप से कहा, सचमुच वे बड़े सीधे-सादे आदमी हैं। एक-दो दफ़े अगर उनके यहाँ आप हो आवें तो फिर दूसरी जगह आप का कहीं जी ही न लगेगा। वाह रे मिजाज, वह लाखों और करोड़ों में एक ही हैं।

लोकनाथ—अच्छी बात है। बड़े आदमी से मेल-जोल होने से कभी काम ही निकलता है।

लोकनाथ की बात सुनकर शिवदयाल ने सम्हलकर बैठते हुए कहा—काम''''हम कहते हैं अगर उनसे आपकी जान-पहचान हो गयी तो आप को किसी बात की तकलीफ ही नहीं हो सकती। ईश्वर ने जिस प्रकार उनको रुतबा दिया है वैसे ही उनको दिल भी दिया है। लोकनाथ जी, मैं कहता हूँ कि वे हजारों में नहीं; लाखों में एक हैं।

लोकनाथ—इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार के आदमी

दुनियां में बहुत कम हैं और जो एक आध हैं भी, उन तक मामूली आदमियों की पहुँच नहीं होती।

शिवदयाल ने पूछा—तो क्या मरज़ी है, चला जाय ?

लोकनाथ—जी हाँ, चलिए, हर्ज ही क्या है।

'अच्छी बात है', कहकर शिवदयाल चलने की तैयारी करने लगे। सायंकाल के साढ़े सात बज चुके थे। कपड़े पहनकर शिवदयाल बाहर निकले और लोकनाथ के साथ मछली बाज़ार की ओर चले। थोड़ी देर में बातें करते हुए दोनों ही आदमी मोतीचन्द के दरवाज़े पहुँच गये। मकान के सामने पहुँच कर शिवदयाल ने कहा—बाबू मोतीचन्द का यही मकान है।

लोकनाथ ने उस विशाल भवन को देखा। तीन खंड का बहुत बड़ा मकान था। नई इमारत थी। मकान के कई स्थानों में बिजली का प्रकाश हो रहा था, जिससे रात में भी मकान चारों तरफ़ से चमम रहा था। शिवदयाल ने नीचे से आवाज़ दी—मोती बाबू।

ऊपर से उत्तर मिला—कौन, शिवदयाल ? चले आइए।

शिवदयाल लोकनाथ को लेकर ज़ीने में चढ़ते हुए ऊपर गये। लोकनाथ ने ऊपर जाकर देखा, एक बहुत बड़े कमरे में बिजली की तेज़ रोशनी हो रही थी। कमरे के बीच में एक बहुत सुन्दर बड़ी मेज़ थी। उसके चारों ओर पन्द्रह-सोलह कुर्सियाँ रक्खी थीं। मोतीचन्द एक बहुत सुन्दर पलंग पर बैठे हुए थे। शिवदयाल ने कमरे में जाकर बाबू मोतीचन्द को नमस्ते किया। लोकनाथ ने भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया। दोनों ही आदमी कुर्सियों पर बैठ गए। उनके बैठते ही मोतीचन्द ने पूछा—कहाँ से आ रहे हो शिवदयाल ?

शिवदयाल—घर ही से आ रहा हूँ, दफ़्तर से आकर खाना खाया, उसके बाद सोचा कि आपके दरबार में चलूँ, इस प्रकार यहाँ आगया।

मोतीचन्द ने सिगरेट पीते हुए कहा—बड़ी मेहरबानी।

मोतीचन्द फिर सिगरेट पीने लगे और कुछ देर चुप रह कर लोकनाथ की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा—आपकी तारीफ़?

शिवदयाल—आपका नाम है बाबू लोकनाथ। आप ही के सम्बन्ध में कल मैं आप से ज़िक्र कर रहा था।

मोतीचन्द—ओ, ठीक है। आप बाबू साहब क्या काम करते हैं?

लोकनाथ—कर्नैलगंज में जैनियों का एक आफ़िस है, उसी में मैं काम करता हूँ।

मोतीचन्द—अच्छा, आप उसमें क्लर्क हैं?

लोकनाथ—जी हाँ।

मोतीचन्द—कितने दिन से आप उसमें काम करते हैं?

लोकनाथ—पाँच-छः महीने से।

शिवदयाल ने कहा—पहले यह हमारे आफ़िस में काम करते थे, लेकिन वह काम तीन महीने से अधिक का न था, इसलिए वह काम छूट गया। उसके बाद कुछ दिनों से आपने यह दूसरी नौकरी कर ली है।

'हूँ' कहकर मोतीचन्द ने पुकारा, अरे शितलुवा, ओ शितलुवा किसी का कुछ पता नहीं है, न जाने यह कहाँ ग़ायब हो जाता है

शितलुवा ने आकर कहा—हाँ मालिक।

मोतीचन्द ने उसकी ओर देखकर कहा—अबे, तू कहाँ चल

जाता है ? जब ज़रूरत पड़ती है तो बार-बार बुलाना पड़ता है। पान ले आ।

'बहुत अच्छा' कहकर शितलुवा चला गया। मोतीचन्द फिर सिगरेट पीने लगे। शिवदयाल ने लोकनाथ के लिए कहा—मोती बाबू, आप बहुत अच्छे आदमी हैं। जब से हमारे दफ़्तर में आपने काम करना आरम्भ किया था, उसी समय से हमसे और आपसे मित्रता है। आप का स्वभाव बहुत अच्छा है, आप बड़े मिलनसार हैं।

मोतीचन्द—बड़ी भाग्य थी जो आपके दर्शन हुए। शिवदयाल, इसके लिए आपको धन्यवाद है।

लोकनाथ ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं साहब, मैं किस योग्य हूँ। आप बड़े आदमी हैं, आपकी जैसी प्रशंसा मैंने सुनी थी, वैसा ही मैंने आप को पाया भी।

लोकनाथ चुप होगया। थोड़ी देर के बाद मोतीचन्द ने कहा—शिवदयाल, कुछ खाना-पीना न होगा ?

शिवदयाल—नहीं साहब, मैं तो खाकर आया हूँ।

लोकनाथ ने कहा—और मैं·····मैं भी तो खाकर आया हूँ।

मोतीचन्द—तो भी क्या हुआ, थोड़ा-ही-थोड़ा सही।

मोतीचन्द ने ज्यों ही घूमकर पीछे देखा, शितलुवा पान लेकर आ रहा था। मोतीचन्द ने कहा—पान रख दे और जा तीन थालियों में, कह दे खाना तैयार करके भेज दें।

थोड़ी देर में एक आदमी थालियाँ परोसकर ले आया और तीनों थाली मेज़ पर लगाकर चला गया। मोतीचन्द चारपाई से उठकर एक कुर्सी पर बैठ गये और एक थाली खींचकर शिवदयाल से कहा—आप लोग भी खाइये।

तीनों ही आदमी खाना खाने बैठ गये। अनेक प्रकार की

चीज़ों से खाना तैयार किया गया था। शिवदयाल ने खाना खाते हुए, खाने की बड़ी प्रशंसा की। लोकनाथ शिवदयाल का समर्थन कर रहा था। खाना खाकर लोकनाथ और शिवदयाल ने पान लिया और दोनों ही आदमी मोतीचन्द के मकान की प्रशंसा करने लगे। मोतीचन्द खाना खा चुके, लोकनाथ ने दीवार में लगी हुई घड़ी को देखा तो साढ़े नौ बज रहा था। यह देखकर उसने कहा—शिवदयाल बाबू, अब तो मैं चलूँगा, बहुत देर हो गयी।

मोतीचन्द ने कहा—क्यों, क्या बात है, इतनी जल्दी भागने की क्या जरूरत है।

लोकनाथ कुछ कहना ही चाहता था इतने में शिवदयाल ने कहा—मोती बाबू, जाने दीजिये। घर में आपकी अकेली स्त्री हैं, वे घबराती होंगी।

मोतीचन्द—ओ हो, तब तो मैं आपको नहीं रोक सकता।

लोकनाथ और शिवदयाल दोनों ही उठकर चल हुए। जब ऊपर से उतर कर सड़क पर पहुँचे तो शिवदयाल ने कहा—कहिये बाबू लोकनाथ, देखा ?

लोकनाथ—सचमुच, बहुत बड़े आदमी हैं।

शिवदयाल—लेकिन मिलनसार कैसे हैं।

लोकनाथ—बहुत अधिक।

शिवदयाल—जो पेट-भर रोटी खाता है, वह सीधे नहीं बोलता ? लेकिन बाबू मोतीचन्द को आपने देखा, कितने मिलनसार आदमी हैं ?

लोकनाथ—इसमें क्या शक है।

कुछ दूर आगे चलकर शिवदयाल अपने मकान की ओर

चले गये और लोकनाथ ने अपने घर के लिए पटकापुर का रास्ता पकड़ा।

रात में करुणा से कुछ बातचीत नहीं हुई। सबेरे लोकनाथ जब सोकर उठा, तो उसने देखा करुणा बहुत पहले की जगी हुई है। उसने पूछा--करुणा क्या आज मुझे उठने में देर हो गयी है।

करुणा--देर हो ही जायगी, जब सोने का समय होता है तब तुम घूमा करते हो। फिर सुबह उठने में देर क्यों न होगी।

लोकनाथ--मैं शाम को शिवदयाल के मकान गया था। सोचा था थोड़ी देर बैठकर लौट आऊँगा परन्तु वहाँ से मुझे एक दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, मैं समझता हूँ कि ऐसे स्थानों पर जाने-आने से एक दिन अपना कुछ-न-कुछ लाभ ही हो सकता है।

'ऐसा कौन-सा स्थान है' करुणा ने उत्सुकता के साथ पूछा।

लोकनाथ—यहाँ पर एक मुहल्ला है मछलीबाज़ार, उसमें एक रईस रहते हैं, मैं तो उनका सुन्दर मकान देखकर दंग रह गया। सचमुच बहुत बड़े आदमी हैं। वहाँ जाने के पहले शिवदयाल ने मुझसे तारीफ़ की थी, लेकिन मुझे उन बातों पर पहले विश्वास नहीं हुआ, परन्तु जब गया तो वे सभी बातें ठीक निकलीं, जो शिवदयाल ने मुझसे कहीं थीं।

करुणा--परन्तु तुम रईस साहब के यहाँ पहुँच कैसे गये? क्या मकान के बाहर से ही तुम उनकी रईसत देखते रहे?

लोकनाथ—मैंने बताया न कि शिवदयाल ने मुझसे उनकी प्रशंसा की थी और उन्होंने उनके स्वभाव-व्यवहार......।

करुणा—यह तो मैं समझ गयी, तो क्या उनके प्रशंसा कर देने से ही तुम वहाँ पहुँच गये।

लोकनाथ--उह, तुम सुनो भी तो, मैं बता ही रहा था, तब तक तुम बीच में कूद पड़ी। उस रईस से और शिवदयाल से मित्रता है। शिवदयाल रोज़ वहाँ आते-जाते हैं, वही मुझको भी लिवा गये थे। फिर क्या बताऊँ, उनका इतना सुन्दर मकान, बिजली के प्रकाश में संगमरमर की भाँति चमक रहा था।

करुणा--अच्छा, मैं समझ गयी। इसीलिए तुमको उतनी रात हो गयी थी। क्या वहाँ से आने का जी न चाहता था?

लोकनाथ कुछ विनम्र होकर बोला—आने को जी क्यों न चाहता था। तुमसे एक बात बताते हैं। एक वे भी आदमी हैं, जो इतने अच्छे स्थानों में रहते हैं जो देवलोक मालूम होता है और एक हम भी हैं जो इस प्रकार के सड़े मकानों में रहते हैं।

करुणा--वाह, यह सड़ा मकान है, सड़ा क्यों है?

लोकनाथ ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—सड़ा तो है ही, कहाँ वह और कहाँ यह!

'परन्तु'·····अपनी खराब चीज़ भी दूसरों की सुन्दर चीज़ों से अच्छी होती है!' करुणा ने गम्भीरता के साथ कहा।

लोकनाथ हस पड़ा, उसने हँसते-हँसते कहा—नहीं भाई यह तो सब कहने की बातें हैं, मन बहलाने के लिये ये बातें कही जा सकती हैं। नहीं तो·····।

लोकनाथ चुप हो रहा। करुणा उसके मुंह की ओर ध्यान से देख रही थी, लोकनाथ के चुप होजाने पर उसने पूछा—नहीं तो क्या?

लोकनाथ—नहीं तो यही कि अच्छा, अच्छा ही है और खराब, खराब ही है!

लोकनाथ की बात सुनकर करुणा गम्भीर हो उठी, उ

हृदय की गति तीव्र होगयी। वह निर्निमेष दृष्टि से लोकनाथ की ओर देखकर रह गयी। लोकनाथ ने पूछा--क्यों, क्यों ?

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया, उसके अचञ्चल नेत्र अब भी लोकनाथ की ओर देख रहे थे। लोकनाथ ने फिर पूछा—क्यों क्या बात होगयी ?

करुणा--बात कुछ नहीं होगयी, अब तुमको अकेले घूमने-फिरने नहीं जाने दूँगी।

लोकनाथ—इसका क्या अर्थ ?

लोकनाथ मुस्करा रहा था, करुणा के होठों में भी हँसी का अप्रकट आभास होरहा था। लोकनाथ की ओर क्षण-भर तक देखकर करुणा ने पूछा—ख़राब, ख़राब ही है और अच्छा, अच्छा ही है ?

लोकनाथ—हाँ, और नहीं तो क्या !

"तो ऐसे ही तुम मेरे लिए भी एक दिन कहोगे," कहकर करुणा ने अपने विशाल और भावपूर्ण नेत्रों से लोकनाथ की ओर देखा। उसके लाल वर्ण होष्ठों पर मुस्कराती हुई हँसी, मानो नृत्य कर रही थी !

लोकनाथ ने उत्तर दिया--तुम क्या ख़राब हो, तुम कितनी सुन्दर हो, इसको तुम स्वयं नहीं जानती !

करुणा—परन्तु मुझसे भी तो बहुत सुन्दर हैं।

लोकनाथ—तो इससे क्या।

एकाएक किसी ने दरवाज़े पर आवाज़ दी और भीतर आँगन में आकर उसने कहा—नौ बज रहे हैं, अभी तक आप आफ़िस के लिए तैयार नहीं हुए ?

शिवदयाल को देखते ही लोकनाथ चारपाई भीतर से बाहर

निकाल लाया। उसपर बैठते हुए उसने कहा—कल रात को बड़ी देर तक आप घुमाते रहे, रात को लेटा तो कुछ देर तक नींद ही न आयी; इसीलिए आज सबेरे उठने में बड़ी देर होगयी।

शिवदयाल—ठीक यही हालत मेरी भी हुई, लेकिन मैं पहले तो सो गया, फिर दो बजे नींद खुल गयी, उसके बाद चार बजे तक किसी तरह नींद नहीं आयी। पहले तो सोचा कि चलकर आपके यहाँ पहुँचूँ परन्तु फिर सोचा, क्यों व्यर्थ में कष्ट दूँ।

लोकनाथ—हाँ हाँ, चले आते हर्ज ही क्या था। कुछ देर बातें ही होतीं।

चारपाई से कुछ दूर पर करुणा बैठी हुई इन बातों को सुन रही थी। उसने कहा—तो आज दफ़्तर जाने की क्या ज़रूरत है बातें ही होलें। आधी रात तक बातें करके भी पेट न भरा था।

करुणा की बात सुनकर शिवदयाल बड़े जोर से हँसने लगे। लोकनाथ को भी हँसी आगयी। शिवदयाल ने करुणा की ओर देखते हुए कहा—आप यह ठीक कहती हैं, इनकी बातों से मैं खुद बहुत परेशान हूँ। सचमुच कल तो आधी रात तक आपकी बातें ही नहीं खतम हुईं।

लोकनाथ ने हंसते हुए कहा—अरे क्यों झूठ-मूठ आप मुझपर दोष लगाते हैं। एक तो ज़बरदस्ती पकड़कर आप मुझको वहाँ पर लेगये और अब ऐसा कहते हैं।

शिवदयाल—इसका तो फैसला ये स्वयं कर लेंगी। हमारी और आपकी इन बातों की ये जज हैं।

शिवदयाल ने अपनी बात कहकर कनखियों से करुणा की ओर देखा। करुणा ने अपना सिर नीचा कर लिया। उसने कुछ उत्तर न दिया। कुछ देर तक किसी के न बोलने पर शिवदयाल

ने हँसते हुए ज़ोर से कहा—इस चुप्पी को देखकर अब मुझे सन्देह होता है, जान पड़ता है हाकिम पक्षपाती है।

लोकनाथ—यह पहले आपको सोच लेना चाहिये था। अब आपके यह कहने से क्या होता है।

शिवदयाल—अच्छा जाने दीजिये। अब यह बताइए कि आप लोग कुछ खिलाएँ-पिलाएँगे। जब मैंने देखा कि आप लोग पूछने वाले नहीं हैं तो फिर मैंने ही बेशर्म होकर पूछा।

लोकनाथ—बेशरमी की क्या बात है। खाना तैयार है, चलिए खायें। अपने घर में बेशर्मी कैसी!

"लेकिन आप ही के कहने से क्या होता है" कहते हुए, हँसकर शिवदयाल ने करुणा की ओर देखा।

करुणा—जी हाँ खाइए। जो कुछ है, आप ही का है।

कुछ देर तक बातें होती रहीं। शिवदयाल ने कहा—अभी तो मैं खाकर आया हूँ, अब शाम को रखिये। उसी समय हम सब लोग एक साथ बैठकर खायँगे।

"अच्छी बात है" कहकर लोकनाथ खाने के लिए उठ गया। शिवदयाल भी उठकर वहाँ से जाने लगा। चलते हुए उसने कहा, अभी मैं जाता नहीं हूँ। करुणा, लोकनाथ को भोजन परोसने लगी।

थोड़ी देर में शिवदयाल फिर लौटा। उसके साथ एक मजदूर था, वह झल्ली में अनेक चीज़ें रखे हुए था। भीतर जाकर शिवदयाल ने झल्ली उतरवाई और करुणा की तरफ़ देखकर कहा, इन चीजों को रख लीजिए।

करुणा ने अनेक प्रकार की चीजों से भरी हुई झल्ली की ओर देखकर कहा—इन सब चीज़ों की क्या ज़रूरत थी।

'सचमुच शिवदयाल बाबू, ये सब आप क्या ले आये' कहते हुए लोकनाथ ने झल्ली में हाथ लगाया ओ हो, सन्तरे, अंगूर, केला, परवल, प्याज और पहाड़ी आलू ! आप तो इतना अधिक ले आये हैं जैसे बरात आती हो। लेने ही गये थे तो दो-एक चीजें थोड़ी-सी ले आते।

"मैं कुछ थोड़ी-सी सब्जी ही लेने गया था, लेकिन कुंजड़ों ने ऐसा तंग किया कि इतना लेने पर भी वे लोग पीछे पड़े थे। जिसकी दूकान में एक पैसे की चीज़ पूछी, उसी ने तमाम चीजें उठा-उठाकर झल्ली में डाल दीं, अब भला मैं क्या करता।"

करुणा—तो आप दाम न देते, चले आते।

शिवदयाल—हाँ, हाँ तो वे दाम हमसे माँगते भी नहीं बात यह है कि हमेशा से वे लोग जानते-समझते हैं।

शिवदयाल ने झल्ली से निकल-निकालकर चीज़ें नीचे रखवा और मजदूर को पैसे देकर लौटा दिया। लोकनाथ आफ़िस जा के लिए तैयार हो चुका था चलते हुए शिवदयाल ने करुणा कहा—यदि आपको भोजन बनाने में कुछ कष्ट हो तो जल्दी कीजिएगा। मैं आकर आपकी मदद कर सकता हूँ।

करुणा—जी नहीं, मुझे कोई कष्ट न होगा। आप मेरे का की चिन्ता न करें।

शिवदयाल—आप यह न सोचिएगा कि मैंने यह बात यों कह डाली। मैं खाना बहुत बढ़िया बना लेता हूँ और मज़े की तो यह है कि मेरे मित्रों में जब किसी के यहाँ इस प्रकार समय आया है तो मुझ को ही बहुत कुछ करना पड़ा है। कार यह है कि मेरे जितने मित्र हैं उनकी धर्मपत्नियाँ मेरी इस आदत जानती हैं और न जाने क्यों वे मुझसे ही भोजन बनाने का अ

कांश काम लेने की हठ करती हैं। इसीलिए मैंने आपसे कहा कि यदि आपको कुछ कष्ट हो तो मैं आकर आपकी मदद कर सकता हूँ।

करुणा और लोकनाथ, दोनों ही शिवदयाल की बातें सुन रहे थे। शिवदयाल की बात समाप्त होते-होते लोकनाथ ने हँसते हुए कहा—ऐसा न कहिए, नहीं तो करुणा को रोज ही खाना बनाने में कष्ट होगा।

शिवदयाल ने उत्तर दिया—हाँ, हाँ क्या हर्ज है, सच पूछिये तो मुझे इस प्रकार के कामों में मजा आता है और यही नहीं, करुणा की ओर देखकर कहा, आपको मालूम नहीं है, पाकशास्त्र का जिस प्रकार मुझे ज्ञान है, स्त्रियों को क्या हो सकता है।

शिवदयाल के चुप होते ही करुणा ने कहा—नहीं, आपकी परीक्षा की जरूरत नहीं है, मुझे आपकी योग्यता पर सन्देह नहीं है। भोजन बनाने में मुझे कोई कष्ट न होगा। मुझे खुशी है कि आपकी धर्मपत्नी को आपसे बड़ा आराम मिलता होगा!

करुणा की बात सुनकर लोकनाथ बड़े जोर से हँस पड़ा। शिवदयाल भी हँसने लगे। इसके बाद दोनों आदमी अपने-अपने दफ्तर चले गये। करुणा अपने घर का काम-काज करने लगी। शिवदयाल जब अपने दफ्तर जारहे थे, उस समय उनके नेत्रों में चारों ओर करुणा ही दिखाई दे रही थी। वे मन-ही-मन सोच रहे थे, सचमुच कितनी सुन्दरी है, उसके बोलने में तो मालूम होता है फूल झड़ते हैं। जी चाहता है कि रात-दिन उसी की बातें सुना करूँ। लेकिन मैंने भी आज खूब किया। झल्ली को [illegible]मान देखकर, यह नामुमकिन है कि उसके दिल पर मेरा [illegible]न हुआ हो।

आफ़िस के काम में आज शिवदयाल का जी न लगा। कई बार सोचा, कुछ बहाना करके छुट्टी लेकर चला जाऊँ, परन्तु कुछ सोच-विचार कर वैसा न किया। धीरे-धीरे चार बज गये। अब चलने में अधिक देरी नहीं है। यह सोचकर शिवदयाल का हृदय प्रफुल्लित होने लगा। पाँच बजते-बजते शिवदयाल ने आफ़िस छोड़ दिया और सीधे मेस्टन रोड जाकर शिवदयाल ने एक अच्छी-सी लालटेन ख़रीदी। उसके बाद उसमें मिट्टी का तेल डलवाकर वे पटकापुर की ओर चले। रास्ते में वे सोचते जाते थे, शायद लोकनाथ भी न आया हो परन्तु इसमें हर्ज क्या है; न आया हो, यह भी अच्छा ही होगा।

थोड़ी देर में करुणा के मकान पहुँचकर भीतर प्रवेश करते ही शिवदयाल ने देखा, लोकनाथ कपड़े उतार रहा है। शिवदयाल ने जाकर लालटेन आँगन में रख दी और पास ही पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गया। लोकनाथ ने कहा—कहिए, आज आपके आफ़िस में कोई नई बात हुई?

'कोई बात नहीं, और भाई अगर सच पूछो तो आज मेरा दफ़्तर में जी भी नहीं लगा', शिवदयाल ने अर्द्ध नेत्रों से करुणा की ओर देखते हुए कहा—बात यह है कि आज सुन्दर-सुन्दर बननेवाले खाद्य पदार्थों पर मेरे प्राण अटके रहे।

करुणा से बिना बोले न रहा गया। उसने कहा—उन पदार्थों के बनने में थोड़ी-सी देर अभी और है, उनको अभी अटकाए रहिए; कहीं धोखे में निकल न जाँय।

करुणा की बात सुनकर शिवदयाल और लोकनाथ जोर से हँस पड़े। करुणा भी हँसने लगी। शिवदयाल ने हँसते-हँसते कहा—आप तो बड़ी हाजिर जवाब हैं।

करुणा ने कुछ उत्तर न दिया । शिवदयाल ने लोकनाथ से कहा--देखिए इस लालटेन से आपका काम चल सकता है ?

लोकनाथ—नहीं, हमारे यहाँ तो एक दीपक है; उससे हमारा काम निकल जाता है ।

शिवदयाल—तो फिर यह तो आपके लिये आगयी है ।

लोकनाथ—यदि मेरे लिए आप लाए हों तो व्यर्थ ही में आप ने दाम डाले ।

शिवदयाल—मैं लालटेन लाने नहीं गया था । मैं सीधा घर गया था । वहाँ से लौटकर यहाँ आ रहा था, रास्ते में लालटेन वाले की एक दूकान पड़ी । मैं यों ही इस लालटेन को देखकर दूकान-दार से बात कर बैठा । मुझे लालटेन की जरूरत न थी । घर में भी मेरे दो लालटेनें हैं । सच मानिए दूकानदार मेरे पीछे पड़ गया; मैंने उससे कहा भी कि हमको लालटेन की जरूरत नहीं है, लेकिन उसने न माना । आखिर मुझे लालटेन लेनी ही पड़ी । आपके यहाँ लालटेन नहीं है इसलिये इसको काम में लाइए ।

भोजन तैयार हो चुका था । लोकनाथ और शिवदयाल—दोनों आदमी खाना खाने बैठ गये । शिवदयाल ने साथ बैठकर खाना खाने के लिए करुणा से बहुत कुछ कहा परन्तु उसने स्वीकार न किया । बहुत आग्रह करने पर उसने उत्तर दिया—हमारे देश में स्त्रियाँ मरदों के साथ बैठकर खाना नहीं खातीं ।

शिवदयाल के पास इसका कुछ उत्तर न था । दोनों आदमी खाना खाने लगे । खाना खाते हुए शिवदयाल ने अनेक बार भोजन बनाने की । प्रशंसा की जब खाना खा चुके तो शिवदयाल ने इतने सुन्दर भोजनों के लिए धन्यवाद दिया और उसके बाद लोकनाथ को लेकर शिवदयाल वहाँ से चले गये ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

सुख के दिन बीतने में देर नहीं लगती परन्तु दुःख के दिनों का एक-एक पल पहाड़-सा जान पड़ता है।

करुणा अपने आँगन में चारपाई पर बैठी हुई एक पुस्तक पढ़ रही है। पढ़ने में उसका जी नहीं लगता, फिर भी वह पढ़ने की कोशिश करती है। इस अवस्था में कुछ समय और बीता। अब उसका जी पढ़ने में नहीं लगा। उसने पुस्तक बन्द कर दी और दीर्घ निःश्वास लेकर चुप हो रही। उसके हृदय में तरह तरह की बातें उठने लगीं। मन-ही-मन वह सोचने लगी—क्या इन दिनों का कभी अन्त न होगा! हमारा जीवन कितना दुखी है—कितना दरिद्र है। कानपुर आकर कुछ महीने तो आराम से कट गये, परन्तु इधर दो महीने से जिस प्रकार दिन बीत रहे हैं, उससे तो बहुत घबराहट हो रही है।

अचानक किसी के बाहर से आने की आवाज़ मालूम हुई। करुणा ने कान लगाकर उस आवाज़ को सुनने की कोशिश की, परन्तु कहीं कुछ न जान पड़ा। वह फिर सोचने लगी—ईश्वर हमसे क्यों नाराज़ है—हमने उसका क्या बिगाड़ा है? परिश्रम करने के बाद भी पेट-भर खाने को न मिले, यह कैसी बात है।

करुणा ने अपने घर में इधर-उधर देखा, चारों ओर सन्नाटा था, कहीं कुछ न होने पर भी, उसको आज जाने कैसा मालूम हो रहा था। उसी समय लोकनाथ ने आकर कहा, करुणा क्या कर रही हो?

करुणा ने अपने मन के भावों को बदल कर कहा—कुछ नहीं, यों ही बैठी हूँ, अकेले जी नहीं लगता। बार-बार·····।

शिवदयाल को आते देखकर, करुणा चुप हो गयी। शिवदयाल ने भीतर से आकर पूछा—क्यों क्या बात है?

लोकनाथ—कुछ नहीं आइए, बैठिए।

करुणा चारपाई से उतर कर नीचे कुछ दूर पर खड़ी होगयी। शिवदयाल चारपाई पर बैठ गये और कहने लगे—अच्छा तो क्या वह बक़ाया वेतन नहीं देना चाहता?

लोकनाथ ने कुछ सोचकर कहा—देना चाहता है या नहीं, यह तो दूसरी बात है परन्तु उससे अब मिलने की आशा नहीं है।

शिवदयाल—ऐसा क्यों?

लोकनाथ—इसलिये कि हमें उसके पास दौड़ते हुए लगभग दो मास हो गये। उससे कुछ मिला नहीं। वहाँ जो लोग काम करते हैं उनका कहना है कि न जाने कितने ऐसे आदमी हैं जिन्होंने वहाँ पर काम किया है और काम छूट जाने पर वेतन के लिए महीनों से दौड़ रहे हैं, किसी को कुछ नहीं मिलता। मुझसे स्वयं कई लोगों से बातें हुईं, जो अपने वेतन के रुपये नहीं पा रहे और अब उन लोगों ने दौड़ना बन्द कर दिया है।

शिवदयाल—फिर उसके यहाँ लोग कैसे काम करते हैं?

लोकनाथ—जब तक कुछ मिलता जाता है, तब तक काम करते हैं जब नहीं मिलता तो काम बन्द कर देते हैं। जब कोई आदमी वहाँ काम छोड़ देता है तो उसके स्थान पर दूसरा आदमी रख लिया जाता है, नये आदमी को इन बातों का पता तो कुछ होता नहीं है। जब उस पर भी वही बीतती है, तब

उसको उन बातों का पता होता है, फिर पता होने से ही क्या होता है।

शिवदयाल—आपका उस पर कितना बाक़ी है?

लोकनाथ—हमारे पचपन रुपये बाक़ी हैं। दो महीने की तो आधी-आधी तनख़्वाह बाक़ी हैं और दो महीने से कुछ मिला ही नहीं।

शिवदयाल—बड़ा बेईमान आदमी है।

लोकनाथ—यहाँ पर काम छोड़ने के पहले ही मैं इस खोज में था कि कोई दूसरा काम मिल जाय परन्तु न मिला। काम छूट जाने पर भी मैंने बड़ी कोशिश की परन्तु कहीं पर कुछ आशा नहीं मालूम पड़ती।

शिवदयाल—मालूम क्या हो, आजकल का समय इतना ख़राब है कि कोई भी काम चलता नहीं है। सभी कार-बार वाले रो रहे हैं। हर एक दफ़्तर में आदमी कम किये जा रहे हैं। बड़ी मुश्किल है। मैंने अपने मैनेजर से भी कहा था, परन्तु वहाँ भी गुंजाइश नहीं है।

लोकनाथ—इधर हमारे दिन जिस कठिनाई से कट रहे हैं, उनके लिये मैं क्या बताऊँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है; किस तरह से काम चले।

शिवदयाल—आपको कष्ट ज़रूर है। देखिये मैं दो-चार जगह जाकर आपके लिये कोशिश करूँगा। होने को तो कुछ प्रबन्ध होवेगा ही। परन्तु जब तक नहीं होता, तभी तक बात है।

कुछ देर के बाद शिवदयाल उठकर जाने लगे। चलते समय उन्होंने कहा—मैं शाम को फिर आऊँगा, घबराइये नहीं।

शिवदयाल चले गये। लोकनाथ उसी चारपाई पर लेट गया।

करुणा भी उसी पर आकर बैठ गयी। लोकनाथ को चुपचाप देखकर करुणा ने पूछा—कुछ मिला नहीं ?

लोकनाथ—कुछ नहीं। दो-एक आदमी मेरे मिलने वाले थे, उनसे जाकर मैंने माँगा भी, परन्तु उन लोगों ने साफ़ इन्कार कर दिया। शिवदयाल से माँगा तो नहीं परन्तु घर की दशा बताई थी लेकिन उन्होंने भी कुछ नहीं दिया। वह देखकर माँगने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ी।

करुणा कुछ न बोली। लोकनाथ ने उसके मुख की ओर देखा और कुछ सोचकर पूछा—भूख लगी है ?

करुणा—और तुमको ?

लोकनाथ ने करुणा के प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर पूछा—घर में कुछ है नहीं ?

करुणा—घर में तो कल सुबह से ही कुछ नहीं है। होता तो कल शाम को ही न बनाया होता।

करुणा चुप होगयी। लोकनाथ मन-ही-मन कुछ सोचने लगा। पर उसकी समझ में कोई बात नहीं आई। कहीं पर उसे कोई आदमी ऐसा नज़र न आया जिसके पास जाकर वह कुछ ला सकता। लोकनाथ के हृदय में घबराहट बढ़ने लगी। उसके मन में बार-बार उठने लगा, कल से खाना नहीं बना, बिना खाए-पिए आज दूसरा दिन है, करुणा का कोमल शरीर किस प्रकार इसको सहन करेगा ! आज हमारी ऐसी दशा !

करुणा पास ही बैठी थी, उसने देखा, लोकनाथ की आँखों में आँसू आगये। यह देखकर करुणा ने अपनी धोती के आञ्चल से उसकी आँखों के आँसू पोंछते हुए कहा—तुम इतना क्यों घबरा रहे हो, घबराने से काम नहीं चलता।

लोकनाथ ने ठण्ढी साँस लेकर कहा—मैं घबराता नहीं हूँ, लेकिन कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता। यों तो पन्द्रह-सोलह दिनों से खाने-पीने में गड़बड़ हो रहा है परन्तु कुछ-न-कुछ रूखा-सूखा हम लोग खा-पी लेते थे, कल से तो कुछ भी खाने को नहीं मिला। और कोई काम हो तो दस-पाँच दिन के बाद हो सकता है, लेकिन खाने-पीने का प्रश्न तो बड़ा भयानक होता है। बिना खाए-पिए एक दिन काटना मुश्किल हो जाता है।

करुणा—हाँ, यह तो ठीक है, परन्तु हिम्मत न हारना चाहिए। रायबरेली की बातें क्या तुमको भूल गई हैं। उस समय तो तुम बड़े साहस की बातें करते थे फिर आज क्यों घबरा रहे हो; तुम मेरी चिंता न करो। जब तुम घर से कहीं चले जाते हो, उस समय मेरा जी जरूर घबराता है किन्तु जब तुम आ जाते हो तो मुझे सब कुछ भूल जाता है।

लोकनाथ—मैं अपने कष्टों का इतना खयाल नहीं करता लेकिन तुम्हारे कष्ट मुझसे देखे नहीं जाते। मैं अनेक बार इस बात को सोच चुका हूँ कि मेरे साथ तुम्हारा ब्याह करके, तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया गया है। मैं तुम्हारे योग्य न था।

करुणा ने लोकनाथ के वक्षःस्थल पर हाथ रखकर कहा—तुम ऐसी बातें क्यों सोच रहे हो। घबराओ नहीं, कुछ हिम्मत से काम लो, यही समय न बना रहेगा। देखो जब रायबरेली से आए थे तो कुछ भी सहारा न था परन्तु ईश्वर ने कुछ ऐसी सहायता की कि तुरन्त एक काम मिल गया। अब तो तुम्हारे जान-पहचान के कितने ही यहाँ आदमी हो गए हैं फिर इतना ज्यादा घबराने की क्या जरूरत है। मैंने एक उपाय सोचा है, हमारे पीछे जो खत्रियों का घर है, उस घर की स्त्रियाँ मुझसे बड़े

प्रेम से बोलती-बताती हैं यदि तुम कहो तो मैं वहाँ जाकर उनसे कुछ माँगूँ।

लोकनाथ—क्या तुमको विश्वास है कि उनसे कुछ मिल जायगा?

करुणा—यह पहले से कैसे कहा जा सकता है, परन्तु विपद् पड़ने पर किसी से सहायता लेने में कोई पाप नहीं होता।

लोकनाथ—यदि तुम्हारी हिम्मत हो तो जाओ, माँगकर देख लो।

करुणा जिन कपड़ों को पहने हुए बैठी थी, वे बहुत मैले हो गए थे। उसने जल्दी के साथ मैले कपड़ों को बदलकर दूसरे कपड़े पहने और सिर के बालों को कंघी से सम्हालकर वह मकान से निकल गयी। खत्री महाशय का मकान करुणा के मकान के बिल्कुल पीछे था। करुणा उस मकान में चली गयी और पन्द्रह-बीस मिनट में लौटकर उसने लोकनाथ के हाथ में दो रुपये दिये। रुपये देखकर लोकनाथ ने पूछा—दे दिये, तुमने क्या कहा था?

करुणा—जिनसे मैं रुपये माँगकर लाई हूँ, वे बड़ी सीधी हैं, मुझसे बहुत प्रेम करती हैं, छत पर से मुझसे अक्सर बातें होती हैं।

लोकनाथ उठकर बैठ गया और करुणा से कहने लगा, मैं जाता हूँ एक रुपये का थोड़ा-थोड़ा सामान ले आऊँ। लकड़ी तो होगी, तब तक तुम चूल्हा जलाओ।

लोकनाथ घर से निकलकर एक दूकान पर गया और वहाँ से आठ आने का आटा और आठ आने की दाल लेकर लौट आया। करुणा ने चूल्हा जला दिया था। सामान आ जाने पर उसने खाना-बनाना आरंभ कर दिया। करुणा जब रोटी बना चुकी तो

थाली में परोसकर तैयार किया। लोकनाथ भूखा तो था ही, हाथ-पैर धो कर वह खाने के लिए बैठ गया। करुणा भी उसी समय बैठकर खाने लगी। खाना खा चुकने पर उसने कहा—अगर मैं समझती कि कहीं से कुछ न मिलेगा तो जब तुमको मैंने भेजा था उसी समय मैं यह रुपये ला सकती थी।

लोकनाथ—लेकिन इनसे कितने दिन कटेंगे ?

करुणा—क्या हमेशा ऐसे ही दिन बने रहेंगे ?

लोकनाथ ने कुछ भी उत्तर न दिया। वह शान्त होकर अपनी अवस्था पर बार-बार विचार करने लगा। लोकनाथ के सामने इस समय जो कठिनाई थी, उसका उसने कभी विचार तक न किया था। दफ्तरों के मालिक इतने अनुदार और बेईमान होते हैं, इसका उसे कुछ पता न था। आज कल शिवदयाल को छोड़कर उसका कोई और सहायक न था इसीलिए लोकनाथ अपने काम की खोज में अन्यत्र जाने की अपेक्षा, वह शिवदयाल के पास अधिक जाता था। शिवदयाल भी नित्य लोकनाथ के घर जाता था और बैठकर घंटों बातें किया करता था।

'आज घर में कुछ जरूरी काम है' यह कहकर शिवदयाल एक दिन अपने आफ़िस से चार बजे के पहले ही चले आये। शिवदयाल का घर परेड पर था, परन्तु वे अपने घर न जाकर लोकनाथ के घर की ओर चले। रास्ते में शिवदयाल सोचते जाते थे, चार बजे लोकनाथ मोती बाबू के यहाँ जायगा, पाँच बजे के लगभग वे उसको पत्र लिख देंगे, उसको लेकर लोकनाथ रेलबाजार जायगा। वहाँ पर साढ़े छः बजे के पहले भेंट नहीं हो सकती। इस प्रकार लोकनाथ आठ बजे के पहले लौट नहीं सकता।

सब्जी मंडी जाकर शिवदयाल ने कुछ अंगूर और संतरे

खरीदे और उनको लेकर वे पटकापुर के लिये चले। उनके हाथ में घड़ी बँधी थी। कुछ आगे चलकर उन्होंने देखा, सवा चार बज चुका था। कुछ और तेजी के साथ उन्होंने चलने की कोशिश की। लोकनाथ के दरवाजे पर जाकर शिवदयाल ने देखा, किवाड़े भिड़े हुए हैं। वे कुछ ठिठके, उसी समय उनके कानों में आवाज आयी—

निर्बल के बल राम।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम॥

'ये करुणा के शब्द हैं, यह करुणा का स्वर है, यह करुणा की मोहनी आवाज है;' सोचते हुए शिवदयाल ने किवाड़े खोलकर भीतर प्रवेश किया। करुणा चारपाई पर लेटी हुई थी। शिवदयाल को देखकर वह घबरा कर उठ बैठी, उसको उठते देखकर शिवदयाल ने कहा, 'आप लेटी रहिये।' इतने में करुणा चारपाई से उतरकर कुछ अंतर पर खड़ी हो गयी। शिवदयाल चारपाई पर बैठ गये और हँसकर बोले—मेरे आने से तो आपको कष्ट हुआ, आराम से लेटी थीं।

करुणा ने कुछ भी उत्तर न दिया। करुणा को कुछ बोलते न देखकर शिवदयाल ने कहा—लोकनाथ तो मोती बाबू के यहाँ गये होंगे?

'जी हाँ'—कहकर करुणा चुप हो गयी।

शिवदयाल—हम समझते हैं, आज मोती बाबू जहाँ भेजेंगे, वहाँ काम लोकनाथ को जरूर मिल जायगा।

करुणा ने सिर उठाकर देखा, शिवदयाल टकटकी लगाकर, उनकी ओर देख रहा था। करुणा ने अपनी आँखें नीची कर लीं। शिवदयाल ने कहा—आप मुझसे इतना संकोच क्यों करती

हैं। मैं लोकनाथ को अपना सगा भाई समझता हूँ और सब प्रकार की सहायता करने की बात सोचा करता हूँ।

करुणा—यह आपकी उदारता है।

उदारता की बात नहीं है, जब से मैंने आप लोगों को देखा है, मेरे हृदय में कितना प्रेम पैदा हो गया है, मैं इसको बता नहीं सकता।

करुणा ने कुछ उत्तर न दिया। शिवदयाल ने फिर कहा—मैं अपने दफ़्तर जाता हूँ परन्तु वहाँ पर जी नहीं लगता। जब मैं अपने घर जाता हूँ, तो मेरे प्राण यहीं रखे रहते हैं।

करुणा को ये बातें अच्छी न लगीं, परन्तु उसने कुछ कहा नहीं, चुपके खड़ी रही। शिवदयाल ने पूछा—आज कुछ खाया है कि नहीं?

'खाया क्यों नहीं' कह कर करुणा चुप हो गयी।

कुछ देर चुप रहकर शिवदयाल ने कहा—आप मुझे पराया क्यों समझती हैं, मैं चाहता हूँ कि जो कुछ बात हो, आप मुझसे कह दीजिये, और मुझसे जो कुछ हो सकेगा, मैं तुरन्त उसका उपाय करूँगा। कल मुझे लोकनाथ से मालूम हुआ कि एक दिन आपके घर में खाने-पीने को कुछ न था, दो दिन से रोटी न बनी थी, दोनों दिन मैं आपके यहाँ आया था परन्तु आपने मुझसे कुछ जिक्र नहीं किया। यह जानकर मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ। मैं तो समझता हूं कि मेरे और आपके बीच में अब कोई संकोच की बात नहीं रह गयी।

करुणा ने विस्मित नेत्रों से शिवदयाल की ओर देखा, उसके मुखमण्डल पर जिस प्रकार के भावों का आभास हो रहा था, उनको देखकर करुणा का हृदय अस्थिर हो उठा। वह मन-ही-

मन सोचने लगी—किसी प्रकार ये चले जायँ तो अच्छा है।

इसी समय शिवदयाल उठे और एक बड़े रूमाल में बँधे हुए अंगूर और संतरे देने के लिए करुणा की ओर बढ़े। करुणा ने घबराकर अपने उद्विग्न नेत्रों से शिवदयाल की ओर देखा, शिवदयाल ने कुछ पास जाकर कहा, 'आपके लिए मैं कुछ फल ले आया हूँ' कहकर शिवदयाल करुणा के हाथ में फल देने लगे। करुणा ने पीछे हटकर कहा—मुझे फल नहीं चाहिये। आप इन फलों को घर लेते जाइये।

करुणा की बात सुनकर शिवदयाल ने अपने अपमानित नेत्रों से करुणा की ओर देखा और कहा—आप ऐसा मत सोचिये, मेरी ओर देखिये, सुनिये मैं आपको जितना चाहता हूँ, उतना मैं किसी को......।

करुणा ने बात काटकर जोर से कहा—आप इस प्रकार की बातें न करिये। हम लोगों को आपका बहुत भरोसा था। परन्तु आज मुझे आपकी इन बातों को देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा है।

'आश्चर्य की बात नहीं है, मेरे हृदय को देखिये, मैं पागल-सा होरहा हूँ, मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं आप ही का समझता हूं,' कहकर शिवदयाल आगे बढ़े और करुणा का हाथ पकड़कर फल देने लगे, करुणा ने घबराकर झिटका दिया और अपना हाथ छुड़ाकर कहा—मैं आपके हाथ जोड़ती हूं। आप अब यहाँ से चले जाइये।

शिवदयाल ने अपनी जेब में हाथ डाला और दस रुपये का एक नोट निकालकर करुणा की ओर फेंक दिया। करुणा ने उस नोट को अपने पैर से शिवदयाल की ओर हटाकर कहा—मैं

नोटों की भूखी नहीं हूँ, आप इसको ले लीजिये और अपने घर जाइए। विपद में आपने हमलोगों की सहायता की है। इसलिए मैं आपसे अधिक कुछ कहना नहीं चाहती, लेकिन आप अब मेरे ऊपर दया कीजिये, और यहाँ से चले जाइये।

शिवदयाल—अच्छा मैं जाता हूँ, उस नोट को अपने पास रख लो। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, मेरे ऊपर तरस खाओ। मैं और कुछ नहीं चाहता, खाली तुम्हारा प्रेम चाहता हूँ, एक बार प्रेम के साथ मेरी ओर देखो, बस और कुछ नहीं।

करुणा ने रुष्ट होकर कहा—आपके स्त्री है, आपके बच्चे हैं, इस प्रकार की बातें कहते हुये आपको लज्जा नहीं मालूम होती!

लज्जा! लज्जा! तुम्हारी गालियों में भी मुझे अमृत मालूम होगा; तुम अगर अपने जूतों से भी मारो तो भी मैं तुम्हारा प्यार ही समझूँगा। करुणा, प्यारी करुणा, एक बार तुम अपने मुँह से मुझसे प्रेम से बोलो।

करुणा वहाँ से हटकर भीतर जाने लगी, शिवदयाल ने झपटकर पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया। करुणा तुरन्त झिटका देकर, अपना हाथ छुड़ाकर अलग खड़ी होगयी और ज़ोर से चिल्ला उठी—नराधम, राक्षस कहीं के, मेरे मकान से तुरंत निकल जा नीच, नहीं तो·····!

'मैं जा रहा हूँ' हाथ जोड़कर कहते हुए शिवदयाल घर के बाहरी दरवाज़े की ओर बढ़े और किवाड़ों के पास जाकर रुक गये। करुणा अपने भीतरी कमरे के पास खड़ी हुई थी, शिवदयाल ने उसकी ओर देखकर कहा—मैं जारहा हूँ, अपने अपराधों की मैं क्षमा चाहता हूं और सिर्फ एक ही बात·····।

करुणा ने बीच में ही ज़ोर से डाँटकर कहा—यहाँ से अब आपके चले जाने ही में अच्छा है।

शिवदयाल दरवाज़े के बाहर निकल आये और झपटकर वहाँ से चटाई मुहाल की ओर चले। रास्ता चलते हुए शिवदयाल ने कई बार पीछे फिरकर देखा और फिर सोचने लगे, इसको मैं बड़ी सीधी समझता था, लेकिन इतना अहङ्कार! इतना घमण्ड!

करुणा के साथ होनेवाली यह घटना शिवदयाल के नेत्रों में बार-बार घूमने लगी, चटाई मुहाल की सड़क पार करके शिवदयाल काँच के मन्दिर पहुँचे और वहीं पर बैठकर सोचने लगे, इसको अपने रूप का बड़ा घमण्ड है, इसका घमण्ड मैं देखूँगा। मैं इसके यौवन के अहङ्कार को मिट्टी में मिलाकर छोड़ूँगा। यह मुझे क्या समझती है। अगर मैंने इस बीच में सहायता न की होती तो अब तक भूखों मर जाती, फिर भी उसका इतना अहङ्कार! अच्छी बात है।

कुछ देर चुप रहकर शिवदयाल फिर सोचने लगे, लोकनाथ सात बजे के बाद रेलबाज़ार से लौटेगा, आज चलकर मैं ज़रा मोती बाबू से बातें करूँ। यह सोचते हुये शिवदयाल वहाँ से उठे और पहले अपने घर गये, उसके बाद वे वहाँ से मोती बाबू के घर की ओर रवाना हुए। शिवदयाल को अब कहीं अच्छा न लगता था। वे रह-रह कर करुणा के साथ होनेवाली घटना को सोचते थे और उसके बाद क्रोध में आकर अनेक प्रकार की बातें बकने लगते थे। मोती बाबू के मकान पहुँचकर शिवदयाल एक कुर्सी पर बैठ गये। मोतीचन्द ने शिवदयाल की ओर देखकर पूछा—आज दफ़्तर से क्या कुछ जल्दी चले आये थे?

शिवदयाल—नहीं, जल्दी तो नहीं आया था; आज घर पर अधिक नहीं ठहरा, इसीलिए यहाँ आज जल्दी आगया हूँ।

मोतीचन्द—आपके मित्र साहब को मैंने एक चिट्ठी लिख दी थी। अगर वहाँ पर आदमी रक्खा न गया होगा तो इनको काम ज़रूर मिल जायगा।

शिवदयाल ने कुछ उत्तर न दिया। वे बैठे हुये कुछ सोच रहे थे। कुछ ठहरकर मोतीचन्द ने हँसते हुए कहा—लेकिन ये सब काम मुझसे लेते हो और फल तुम भोगते हो।

शिवदयाल ने यह सुनकर हँसने की कोशिश की और अपनी उसी अवस्था में उत्तर दिया—नहीं, मोतीबाबू मैं जो कुछ कर रहा हूँ, आपही के लिए कर रहा हूँ।

मोतीचन्द—ऐसी बात? लेकिन मित्र, तुमने हमको अभी तक दिखाया नहीं?

शिवदयाल—अभी तक मौक़ा न था, लेकिन अब जब आप चाहें तभी।

मोतीचन्द कुछ सोचने लगे। शिवदयाल ने फिर कहा—मोतीबाबू, फिर इतनी हसीन, इतनी सुन्दर मैंने अपनी जिन्दगी में नहीं देखी!

मोतीचन्द का कलेजा तड़प उठा। उन्होंने हँसकर कहा—अच्छा गुरू, इसीलिए तुमने हमको अभी तक अलग रखा है। तुम तो बड़े शिकारी हो, मैं सोचता था कि शिवदयाल क्यों इतनी बहुत सिफ़ारिश करते हैं।

शिवदयाल बड़े ज़ोर से हँस पड़े, मोतीचन्द भी हँसने लगे। कुछ देर में मोतीचन्द ने पूछा—भला तुमको कुछ प्राप्ति हुई?

शिवदयाल—मोती बाबू, सच मानिये, मैंने अपने लिए कु

तक एक बात भी उससे नहीं कही। लेकिन आज मुझको उस पर बड़ा गुस्सा लग रहा है।

मोतीचन्द ने आश्चर्य के साथ पूछा—क्यों, क्या बात है?

शिवदयाल— आज मैं दफ़्तर से आकर सीधा वहीं गया था, उस समय लोकनाथ तो आपके पास चला आया था। मैं कुछ देर तक बैठा हुआ वहाँ बातें करता रहा और बातों ही बातों में पिघलाना चाहा, मैंने उससे कहा, मोती बाबू हमारे एक मित्र हैं, अगर वे तुमसे प्रसन्न हो सकें तो तुम चाँदी से नहीं सोने से लद सकती हो। लेकिन मोती बाबू, उसने ऐसा जवाब दिया है कि मुझे बहुत बुरा लगा है। उसने बड़े अहङ्कार के साथ कहा, मुझे सोने की परवाह नहीं। मोतीबाबू तुम्हारे लिए होंगे, मैं उनको क्या समझती हूँ।

मोतीचन्द—अच्छा, बड़ी सीता-सावित्री है!

शिवदयाल—कुछ नहीं, अगर वह एक बार आपका मकान देख ले तो मैं समझता हूँ कि वह आप पर लट्टू हो जाय। आप ऐसा कीजिए कि अपने यहाँ किसी बहाने से लोकनाथ को और उसको बुलाइए। वे घंटा-दो-घंटा इस मकान में रहें और उसके बाद मोटर पर बैठ कर उसको ज़रा सैर कराइए।

मोतीचन्द ने कुछ सोचकर कहा—और ऐसा क्यों न किया जाय कि एक दिन हम आपके घर में आपकी स्त्री को और उसको निमन्त्रण दें और उसके बाद आपकी स्त्री उसको मोटर पर लेकर घूमने चली जाय। उसके बाद किसी की मोटर मँगा कर स्टेशन के बहाने से हम यहाँ से चले जायँ और अपनी मोटर को किसी निश्चित स्थान पर पा लें। उसके बाद आपकी स्त्री को आपके मकान पर छोड़ दें और उसको हम गायब कर दें।

शिवदयाल ने कुछ सोचकर कहा—लेकिन इस प्रकार उसके कुछ भड़कने का डर है।

मोतीचन्द—फिर, और क्या हो सकता है ?

शिवदयाल—एक दिन आप मोटर पर हमको और लोकनाथ को लेकर चलिये और घूमते-घूमते लोकनाथ के मकान के नीचे से आकर निकलिए। उसी समय किसी बहाने से पहले उसको आप देखिए, उसके बाद फिर मैं आपको रास्ता बताऊँगा।

मोतीचन्द—अच्छी बात है। तो फिर एक दिन रही। तीन बजे दोपहर को यहाँ से चलेंगे और साढ़े चार, पाँच बजे तक लोकनाथ के मकान पर पहुँच जायँगे।

शिवदयाल—ठीक, मैं लोकनाथ को लेकर आपके यहाँ आ जाऊँगा।

उसी समय लोकनाथ आगया। उसके उदास मुख को देखकर मोतीचन्द ने पूछा—कहिए बाबू साहब ?

लोकनाथ—बाबू जी, वहाँ तो आदमी हो चुका है।

मोतीचन्द—ओ, अच्छा कुछ हर्ज नहीं है। बैठिए कुछ चिन्ता मत कीजिये।

लोकनाथ बैठ गया। शिवदयाल ने कहा—मोती बाबू, हमने तो इनसे कह दिया है कि आपको किसी प्रकार का कष्ट न होने पावेगा।

मोतीचन्द—हाँ-हाँ जी, कष्ट किस बात का। हम तो कहते हैं कि अगर कुछ भी प्रबन्ध न हो तो ये दोनों प्राणी आकर हमारे मकान में रहें और इनको किसी प्रकार की हम कोई भी तकलीफ न होने देंगे।

लोकनाथ का हृदय इस उदारता से दयार्द्र हो उठा। उसने

अत्यन्त अनुगृहीत होकर कहा—आपकी जब इतनी कृपा है तो मुझे कोई भी कष्ट नहीं हो सकता।

कुछ देर के बाद लोकनाथ के साथ शिवदयाल वहाँ से चले आये और रास्ते में लोकनाथ से कहने लगे—आज आपकी धर्म-पत्नी मुझसे बहुत नाराज़ हो गई हैं। जिस समय आप······।

लोकनाथ ने आश्चर्य के साथ पूछा—क्या करुणा? आप से नाराज़ हो गयी है! नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता।

शिवदयाल—सुनिए तो, कल आपने घर की जो दशा बताई थी, उससे मुझको बहुत दुःख पहुँचा था। एक तो बड़ा भारी अनर्थ आप यह करते हैं कि पहले से कभी कुछ बताते नहीं हैं। कल मेरे पास कुछ न था इसीलिए मैं आपको कुछ दे न सका था। आज मैं चार-साढ़े चार बजे के लगभग आफ़िस से चला आया था। मैं आफ़िस से सीधा आपके घर गया, मुझे इस बात का ख्याल न था कि आप घर पर न होंगे। मुझे भूख भी लगी थी इसलिए रास्ते में कुछ थोड़े-से फल ले लिए थे, जब आपके घर गया तो मालूम हुआ कि आप नहीं हैं। उस समय बिना कुछ अधिक कहे-सुने आपकी धर्मपत्नी को वे फल और दस रुपये का एक नोट देना चाहा; लेकिन उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। मैंने उनको समझाया भी कि आप संकोच न कीजिये, मेरे और बाबू लोकनाथ के बीच में अब कोई संकोच की बात नहीं है। केवल इसी बात पर, पता नहीं क्या सोचकर वे मुझसे कुछ अप्रसन्न भी हुईं। यद्यपि मुझे उनकी बातों का कोई ख्याल नहीं है; परन्तु उनको ज़रा आप समझा दीजिएगा और कह दीजिएगा कि वे मेरी ओर से कभी इस प्रकार का सन्देह न करें। समय पड़ने पर आप हों या न हों, मैं जो कुछ देना चाहूँ, उनको दे

सकूँ। यदि उनको लेने में कुछ आपत्ति होगी तो फिर मैं आप ही को दूँगा; पर इससे उनकी ही कठिनाइयाँ बढ़ेंगी।

लोकनाथ—मैं आपकी इस उदारता के लिए क्या कहूँ। और करुणा, करुणा में लड़कपन ही अधिक है, आप उसकी बातों का कभी कुछ ख़्याल न कीजिएगा। मैं आज उसको समझा दूँगा।

शिवदयाल ने प्रसन्न होकर कहा—सचमुच ही बाबू लोकनाथ, न जाने आप लोगों से क्यों इतना स्नेह हो गया है। मैं सच आपसे कह रहा हूँ कि सब प्रकार मैं आप लोगों की सहायता करना चाहता हूँ।

कुछ देर के बाद शिवदयाल अपने घर चले गये। लोकनाथ जब अपने घर पहुँचा तो देखा कि करुणा कमरे में लेटी है और उसके समीप दीपक जल रहा है। लोकनाथ को देखकर करुणा उठकर बाहर आ गयी और उत्सुक नेत्रों से लोकनाथ की ओर देखने लगी।

लोकनाथ ने कहा—करुणा, अभी तुम्हारा लड़कपन नहीं गया। हमारी विपद में यदि कोई मित्र हमारी सहायता करे तो तुम उसको बात-कुबात कहो, यह बात अच्छी नहीं।

लोकनाथ की बात सुनते ही करुणा को क्रोध आ गया, उसके शरीर का रक्त उत्तप्त हो उठा, परन्तु अपने आपको सम्हाल कर उसने सारी बातें लोकनाथ से कह देने का विचार किया। उसने कहना आरम्भ ही किया था कि लोकनाथ ने कहा, तुम उस कथा को रहने दो। मैं सभी बातें सुन चुका हूँ। वे कोई नए आदमी तो थे नहीं, जो कुछ देते थे तुमको ले लेना चाहिये था।

करुणा का हृदय काँप उठा। विस्मित नेत्रों से उसने लोकनाथ की तरफ़ देखकर कहा—क्या मुझको ले लेना चाहिये था

मुझे ले लेना चाहिये था !! मुसीबतों में पड़कर तुम्हारी बुद्धि मारी गई है ! मित्र, मित्र नहीं शत्रु ! नीच, पापी, नराधम और उसके लिए जो कुछ भी कहा जाय, थोड़ा है।

लोकनाथ—सचमुच ही मुसीबतों में पड़कर बुद्धि मारी गयी है, परन्तु मेरी नहीं तुम्हारी ! मैं सारी कथा सुन चुका हूँ, कोई भी ऐसी बात नहीं हो सकती, केवल सन्देह पर ही तुमने यह पागलपन किया है।

'मैंने सन्देह किया है ! मेरा यह पागलपन है ! मेरी आँखों ने धोखा दिया है ! मेरे कान बहरे थे ! हे भगवान् किसी अनाथ स्त्री को तुम्हारे सिवा और कोई सहायक नहीं है' कहकर करुणा चुप होगयी। उसकी आँखों से टूट-टूटकर आँसुओं के बूँद जमीन पर गिरने लगे।

कुछ देर तक लोकनाथ कुछ न बोला; किन्तु अधिक देर तक वह करुणा को रोते हुए न देख सका। कुछ सोचकर उसने कहा—करुणा रोने से शान्ति न मिलेगी; इसलिए यदि तुम बातें करके उस परिस्थिति को समझ लो तो अधिक अच्छा होगा।

करुणा ने अपने आँसू पोंछे और रोती हुई आवाज़ में उसने कहा—मेरी आँखों ने जो कुछ देखा है, मेरे कानों ने जो कुछ सुना है, उसकी अब मैं आलोचना नहीं करना चाहती। मैंने सोचा था कि तुमसे मैं सब बातें कहूंगी परन्तु अब, मेरे हृदय में बल नहीं है। यदि मेरी ही भूल है तो मैं अपनी भूल को सुधारना नहीं चाहती।

'करुणा, फिर भी मैं तुम से एक बार कहता हूँ, रोना छोड़कर तुम मुझसे बातें करो।' कहते हुये लोकनाथ ने करुणा का हाथ पकड़ लिया।

करुणा ने आँसू पोंछकर कहा—कहो, मुझे क्या समझाना चाहते हो?

कुछ देर तक चुप रहकर लोकनाथ ने कहा—जिस विपद का हमें सामना करना पड़ रहा है, उसको तुम भली प्रकार समझती हो। परदेश की बात है, अपना घर नहीं है, अपने भाई-बन्धु भी कोई नहीं हैं। ऐसी दशा में जिस किसी से हमारी मित्रता होगी, उसी से हमको आशा करनी पड़ेगी और यदि वह कुछ हमारी सहायता कर सकेगा तो उसी के सहारे हमको अपने प्राणों की रक्षा करनी होगी। यहाँ आने के पहले शिवदयाल ने मुझसे सब बातें बताई हैं। मेरा अनुमान होता है कि जो स्त्री इन बातों का बहुत विचार रखती है, उसको ऐसे समय पर सन्देह हो सकता है। जो मनुष्य किसी सन्देह पर कुछ करता है, उसको अपना सन्देह, सन्देह नहीं मालूम पड़ता। वह उसको सत्य ही समझता है। मैं समझता हूँ, इसीलिए तुम्हारे हृदय में इतनी जलन हो रही है। मैं यह भी सोच सकता हूँ कि शिवदयाल का कुछ अनुचित भाव रहा हो और इसीलिये वह तुमको सहन न हुआ हो, परन्तु, दोनों ही दशाओं में तुम्हारे सामने कोई धर्म-संकट नहीं है। जब तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार का विकार नहीं है तो कोई भी मनुष्य तुम्हें क्षति नहीं पहुँचा सकता; इसीलिये तुमको रोने की ज़रूरत नहीं है। तुम पर किसी का अधिकार नहीं है। ऐसी अवस्था में यदि किसी के मन में कोई गन्दा विचार रहा भी हो तो इससे तुम्हारी क्या हानि हो सकती है।

करुणा ध्यानपूर्वक लोकनाथ की इन बातों को सुन रही थी। लोकनाथ ने फिर कहा—शिवदयाल का कुछ अपराध हो या न हो, वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते थे कि अब जो कुछ देता-

लेना होगा, हम आपको ही दिया करेंगे। इसमें तो तुमको कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

करुणा ने रोष के साथ कहा—कुछ भी हो, मेरे मकान में इस प्रकार का कोई भी आदमी आज से आ नहीं सकता।

लोकनाथ—हाँ, अब इस बात को ही थोड़ा-सा सोच लेना है। यदि तुम्हारी इस बात को ही हम स्वीकार कर लें तो सोचो, कोई भी हमारी फिर क्यों मदद करेगा। किसी को गर्ज ही क्या पड़ी है। ऐसी दशा में हमारी क्या हालत हो सकती है। इसीलिए..............।

करुणा ने बीच में ही बात काटकर कहा—भीख माँगना अच्छा है, मर जाना अच्छा है परन्तु इस प्रकार के मनुष्यों की सहायता पर जीवित रहना पाप है—महापाप है!

लोकनाथ—इस पर थोड़ा सा विचार कर लो। मैं तुमको किसी प्रकार मजबूर नहीं करना चाहता। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि यदि तुम्हारे विरुद्ध कोई बात न हो तो फिर तुमको किसी बात की आपत्ति न होनी चाहिये।

'हाँ, यदि मेरा सम्बन्ध कुछ न हो तो तुम कुछ भी कर सकते हो, यदि तुम्हारी आत्मा इस बात को स्वीकार करती है तो तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। लेकिन तुम्हारे मित्रों का घर पर आना-जाना अच्छा नहीं है' यह कहकर करुणा चुप होगयी।

लोकनाथ—जिनके घरों में मैं आता-जाता हूँ, वे हमारे घर न आवें, यह कैसे संभव हो सकता है। इसके सिवा, संसार में इस प्रकार की बातों के कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जिनको

तोड़कर कोई भी सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता। शिवदयाल से हमारी मैत्री है और शिवदयाल से बाबू मोतीचन्द से सम्बन्ध है। वे यहाँ के बहुत बड़े रईस हैं, शहर के बड़े-बड़े आदमियों में उनका सर्वत्र मान है, वे मेरे लिए कोशिश कर रहे हैं। ऐसी दशा में कुछ समय के लिये हमको अपनी परिस्थितियाँ देखनी हैं। बुद्धिमान समय को काटते हैं, बड़े-बड़े महारथी समय पड़ने पर सड़े आदमियों के पैरों पड़ते हैं और समय निकल जाने पर वे फिर महारथी बन जाते हैं।

लोकनाथ की बातों को करुणा सुन रही थी। लोकनाथ के चुप हो जाने पर भी वह कुछ न बोली। कुछ देर शान्त रहकर लोकनाथ ने फिर कहा—इसलिये यदि तुम समय को काटना चाहती हो तो तुम इस प्रकार का विद्रोह न करो। जो तुम्हारे विरुद्ध हो, तुम उससे बिल्कुल अलग रहो, लेकिन किसी के घर आने पर उसका आदर-भाव करना तो अपना कर्त्तव्य ही होता है। यदि हमसे कोई व्यवहार रखता है तो हमें भी उसके साथ व्यवहार रखना ही पड़ता है, जो आज हमारी सहायता कर रहे हैं यदि वे तुम्हारे इन विचारों को सुन लें तो सोचो उनको कितना बुरा मालूम हो सकता है। तुम ने रामायण और महाभारत बहुत पढ़ी है; महाभारत में जब पाण्डवों को एक वर्ष का अज्ञात बास हुआ है, उस समय द्रोपदी को एक ऐसे घर में दासी बनकर दिन काटने पड़े हैं, जिस घर का एक बहुत बड़ा अधिकारी द्रोपदी का धर्म-नष्ट करने पर तुला हुआ था। द्रोपदी के पति महा-पराक्रमी अर्जुन इस बात को जानते थे, किन्तु फिर भी वे द्रोपदी को वहाँ से अलग न कर सके थे, इस घटना का क्या परिणाम हुआ, यह सब तुम को मालूम ही है। इसलिये तुमको अपनी रक्षा

करते हुए इस प्रकार चलना चाहिये कि हम जो प्रबन्ध कर रहे हैं, उसमें कुछ गड़बड़ी न हो।

लोकनाथ चुप हो गया। करुणा ने कुछ देर तक शान्त रहकर एक ठंढी साँस ली और पूछा—आज जहाँ गये थे, वहाँ क्या हुआ ?

लोकनाथ—वहाँ के लिए बाबू मोतीचन्द ने पत्र लिख दिया था और ऐसी आशा थी कि हमको काम मिल जायगा; परन्तु भाग्य की बात, वहाँ पर आदमी रख लिया गया था।

करुणा के मुँह से कुछ बात न निकली। वह चुपचाप बैठी रही। लोकनाथ ने फिर कहा—कुछ घबराने की बात नहीं है; बाबू मोतीचन्द बड़े उदार आदमी हैं। कुछ न कुछ प्रबन्ध जल्दी ही हो जायगा, ऐसी आशा है।

करुणा ने कहा—मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम इन सब लोगों का भरोसा छोड़कर स्वयं कोशिश करो तो जल्दी ही कोई न कोई काम मिल सकता है।

लोकनाथ—यह तुम्हारा भ्रम है। आजकल नौकरियों का कहीं पता नहीं। जो कहीं हैं भी, वे बिना सिफ़ारिश के नहीं मिलतीं।

'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर करुणा चुप होगयी।

———

सोलहवाँ परिच्छेद

सुख की खोज में मनुष्य जितनी ही सत्य की हत्या करता है, उतना ही वह कष्टों, यातनाओं और भीषण विपदाओं में फँसता जाता है।

अपने पिता रामऔतार के साथ अपनी ससुराल से दुर्गा के लौट आने पर भी, राजरानी ने उस रहस्य को छिपाकर रखा। परन्तु वह बहुत दिन तक छिप न सका। पहले तो लोग समझते रहे कि दुर्गा से, उसकी ससुराल में सब से लड़ाई होती है, इसीलिए उसके बाप रामऔतार, दुर्गा को अपने साथ लिवा लाये हैं। परन्तु इस बात पर किसी को विश्वास न होता था।

राजरानी अपने घर में ही अधिक रहने की कोशिश करती थी। वह समझती थी कि दूसरों के घरों में जाने से तरह-तरह की बातें उठती हैं, फिर किसको-किसको जवाब दिया जाय। राजरानी, दुर्गा के सम्बन्ध में कुछ बातें न करना चाहती थी। जब कोई पूछ बैठता तो उसको बहुत बुरा लगता, परन्तु वह कर ही क्या सकती थी।

दुर्गा को रामऔतार के घर में रहते हुये जब एक वर्ष से अधिक होगया और उसकी ससुराल से कभी किसी के आने-जाने की, कोई बात मालूम न हुई, तो लोगों में अनेक प्रकार की शङ्कायें उठने लगीं। कितने ही लोग, इस बात की खोज में रहने लगे कि दुर्गा का मामला क्या है। टोला-पड़ोस की स्त्रियाँ जब राजरानी के घर आतीं, तो जान-बूझकर दुर्गा के सम्बन्ध में कुछ छेड़-छाड़ करतीं। वे समझती थीं कि राजरानी इसके सम्बन्ध में अधिक

बातें नहीं करना चाहती, फिर भी वे अनेक प्रकार की बातें करतीं।

जिस बात को छिपाने की चेष्टा की जाती है, वह किस प्रकार लोगों में फैल जाती है, इसको कोई नहीं जानता; परन्तु वह छिपाये नहीं छिपती। दुर्गा के सम्बन्ध में लोगों में ये बातें उठने लगीं कि दुर्गा के ससुरालवाले अब दुर्गा को न बुलावेंगे। इसी बात को लेकर राजरानी से एक दिन एक बुढ़िया से झगड़ा हो गया। वह बुढ़िया राजरानी के घर आयी थी, कुछ और बातों के साथ वह पूछ बैठी—भला, राजरानी, दुर्गा के ससुरालवालों का क्या हाल है, मैं तो सुनती हूँ कि वे लोग दुर्गा को अब न बुलावेंगे।

राजरानी इस प्रकार की बातों को सुनते-सुनते ऊब गयी थी; अब वह सहन न कर सकी। बुढ़िया के मुँह से इस प्रकार की बात सुनकर राजरानी जल उठी और तड़पकर बोल उठी—कौन कहता है कि दुर्गा को अब न बुलावेंगे, जो कहते हों, हमारे सामने आवें और कहें आकर, उनका नाश हो, उनके घर में दिया जलानेवाला कोई न रहे जो हमारी लड़की का भला न देख सकते हों! जिसको देखो, वही दुर्गा को छोड़कर और कोई बात ही नहीं करता।

बुढ़िया भौचक्की-सी रह गयी। कुछ देर तक उसके मुँह से कोई बात न निकली। उसके बाद उसने कहा—बहू मुझ पर क्यों नाराज़ होती हो, मैंने तुम्हारा क्या नुकसान किया है? इन बातों को सुनते-सुनते मेरे कान तो ऊब उठे हैं, इसलिए मेरे मुँह से निकल गया। अगर मैं जानती कि तुम इस प्रकार बिगड़ोगी तो मैं भला क्यों कहती। राम, राम!

राजरानी की आँखों में आग बरस रही थी। इन बातों को सुनते-सुनते वह इतनी ऊब गयी थी कि इसके सिवा अब उसके पास कोई उत्तर ही न था। बुढ़िया की बात सुनकर राजरानी ने कहा—दुर्गा को देखकर जिनकी आँखों में मवाद आता हो, वे अपनी आँखों में पट्टी क्यों नहीं बाँध लेते! मेरे एक लड़की है दो न चार! लेकिन, नाश होजाय उनका, जिनसे मेरी लड़की देखी नहीं जाती!

बुढ़िया चुपके चली गयी। राजरानी को जवाब देने के लिए फिर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। बुढ़िया राजरानी के घर से लौट-कर अपने घर न गयी, रास्ते में उसके कानों राजरानी की बातें बार-बार सुनाई पड़तीं, मानो राजरानी तड़प-तड़प कर कह रही है—नाश हो जाय उनका, जिनसे मेरी लड़की देखी नहीं जाती!

कुछ देर में बुढ़िया एक घर में घुस गयी और जाते ही कहने लगी—राजरानी को तो देखो, बिना लड़ाई की लड़ाई वह मुझसे लड़ती है?

उस घर की स्त्रियाँ बुढ़िया की ओर देखने लगीं, एक ने पूछा, क्या है दादी?

बुढ़िया ने कहा—न जाने मैंने कहाँ-कहाँ सुना है कि दुर्गा के ससुरालवालों ने, दुर्गा को रामऔतार के साथ भेज दिया है, अब वे उसको बुलायेंगे नहीं, यही बात आज मेरे मुँह से निकल गयी। इस पर राजरानी ने न जाने क्या-क्या कह डाला।

उस घर की एक स्त्री ने कहा—हाँ तो राजरानी यह बात छिपावें चाहे जो कुछ, लेकिन सब को मालूम हो चुकी है।

बुढ़िया—मैं अगर समझती कि राजरानी मुझपर इतना

बिगड़ेगी तो मैं उसकी चर्चा ही न करती। मेरी ज़रा-सी बात पर राजरानी ने न जाने क्या-क्या कह डाला।

उसी समय एक स्त्री उस घर में आ पहुँची। उसने बुढ़िया से पूछा—क्यों-क्यों क्या बात है, आज किस पर बहुत नाराज हो?

बुढ़िया ने उत्तर दिया—बहन, मैं किस पर नाराज़ हूं, मेरा किसी ने क्या बिगाड़ा है, लेकिन आज न कुछ बात पर, राजरानी ने सैकड़ों बातें मुझे सुनाई हैं। मुझे तो रह-रहकर ताज्जुब मालूम होता है।

आई हुई स्त्री विस्मय के साथ कुछ पूछना ही चाहती थी तब तक उस घर की एक स्त्री ने कहा—दुर्गा के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें उड़ती हैं, लेकिन कभी किसी ने राजरानी के मुँह पर नहीं कहा। लोग चुपके कह लेते थे और राजरानी भी अपने घर में बैठकर गाली दे लेती थी। आज कहीं इन्होंने राजरानी से ही कह डाला; बस, फिर क्या था, राजरानी का मुँह खुला, अच्छी और बुरी, उसने सैकड़ों बातें बक डालीं।

इन बातों को सुनकर वह स्त्री हँसने लगी। घर की अन्य स्त्रियां भी हँसने लगीं। कुछ देर के बाद बुढ़िया ने कहा—आज मैंने न जाने किसका मुँह देखा था। मैंने इधर बहुत दिनों से उसके घर जाना ही बन्द कर दिया था, आज न जाने कहाँ से मैं पहुँच गयी।

एक स्त्री बोल उठी, पहुँच कैसे न जातीं, न पहुंचतीं तो राज-रानी की ये बातें कौन सुनता!

सभी स्त्रियां हँसने लगीं बुढ़िया को भी हँसी आ गयी। कुछ देर तक इसी प्रकार की बातें होती रहीं। उसके बाद बुढ़िया राजरानी की शिकायत करती हुई वहाँ से चली गयी।

आज शाम को रामऔतार जब अपने काम पर से लौटे तो उनका मन बहुत उतरा हुआ था। उस समय के उनके मनोभाव, उनकी किसी दुश्चिन्ता का स्पष्ट प्रमाण दे रहे थे। जब वे रास्ते में आ रहे थे तब उनका ध्यान ठिकाने न था। वे कुछ बार-बार सोचते और ठंढी साँसें लेकर रह जाते। कुछ ही देर में उनकी उद्विग्नता बहुत बढ़ गयी। वे मन-ही-मन कहने लगे, मैं लोगों को जवाब देते-देते थक गया। न जाने कितनी झूठी बातें कहनी पड़ीं। न जाने कितनी मिथ्या बातों की रचना करनी पड़ी; आखिर ये मिथ्या बातें ही मैं कब तक करता रहूँगा।

रामऔतार कुछ देर के लिए शान्त होगये; किन्तु थोड़ी ही देर में उनके हृदय में फिर दुश्चिन्ताओं के बादल उमड़ने लगे। वे फिर सोचने लगे, भुस पर लीपा नहीं जा सकता, बालू की दीवार खड़ी नहीं की जा सकती। आज इतने दिन हो गये हैं, कितनी प्रकार की बातें न बनाई गयीं, किस-किस प्रकार की बातों से उसको ढकने की कोशिश न की गयी, लेकिन क्या हुआ! इतना झूठ बोलने पर भी क्या लोगों को सन्तोष दिया जा सका! क्या यह बात सही नहीं है कि हम लोगों के लाख झूठ बोलने पर भी लोगों ने तरह-तरह की बातें उठा रखी हैं। किसी का मुँह बन्द नहीं किया जा सका—किसी के मुँह में ताला नहीं दिया जा सका। फिर हमारे झूठ बोलने का फल क्या हुआ, यही न कि झूठ बोलकर और सत्य बात को छिपाकर हम लोगों ने अपने आप को और भी बदनाम कर दिया!

रामऔतार के हृदय में न जाने कितनी बातें उठ रही थीं। वे किसी एक दुश्चिन्ता पर अधीर होकर तरह-तरह की बातें सोचते और उसके अन्त होते-होते उनके सामने दूसरी भीषण समस्या

आकर खड़ी हो जाती, उस समय वे फिर सोचने लगते—एक ओर हमारी यह अवस्था है, दूसरी ओर दुर्गा का प्रश्न है ! दोनों ही प्रश्न एक-से-एक भयानक हैं, झूठ बोलकर और आडम्बर फैला कर जिस अपकीर्ति का संचय हुआ है, उसके फल-स्वरूप हम आज मुँह दिखाने के लायक नहीं हैं। एक ओर यह समस्या है और दूसरी ओर यह कि दुर्गा का क्या होगा। छः महीने से जो बातें उड़ रही हैं, उनमें कुछ सत्य अवश्य है। कुछ तथ्य अवश्य छिपा हुआ है ! यदि यही बात हुई और उन लोगों ने दुर्गा को बिदा न कराया तो कितना भीषण परिणाम होगा !

इसी प्रकार की दुश्चिन्ता में पड़े हुए रामऔतार घर पहुँचे। मानसिक व्यथा के कारण उनका शरीर अस्त-व्यस्त हो रहा था। राजरानी आज स्वयं रुष्ट होकर बैठी थी। बुढ़िया को अनेक बातें सुना चुकने पर भी उसको शान्ति न थी। रामऔतार घर पहुँच कर एक चारपाई पर लेट गए और फिर अपनी दुश्चिंताओं में डूबने-उछलने लगे।

राजरानी ने रामऔतार को चिन्तित देखा, उनका मुख मलीन देखा तो मन-ही-मन वह सोचने लगी, 'क्या इनसे भी किसी से कहा-सुनी हो गयी है, कहने-सुनने वालों पर राजरानी का रोष बढ़ने लगा। उससे बिना बोले न रहा गया। क्रोध में आकर वह बड़बड़ाने लगी—जो हमारी ही बातों में रात-दिन रहते हों, हमारी बातें छोड़ कर जिनके पास दूसरी कोई बातें ही न हों, भगवान् तुम उनको देखना ! जो हमको देखकर जलते हों जो हमारी बदनामी की बातें उड़ाते हों, उनका नाश हो जाय ! उनको लाज नहीं लगती जो चुरा-चुराकर बातें करते हैं। मेरे सामने कोई कहे तो एक-एक को लाख-लाख सुनाऊँ !

रामऔतार ने लेटे हुए राजरानी की बातें सुनीं, उनकी चिन्ता भङ्ग हुई। राजरानी की ओर देखकर उन्होंने कहा—अब तुम अपना मुँह बन्द रक्खो, इसी में तुम्हारी भलाई है?

राजरानी—नहीं तो! नहीं तो कौन क्या मेरा कर लेगा!

रामऔतार—कर लेगा, तुम अपने इस अहङ्कार को अब छोड़ दो। तुम्हारा अहङ्कार ही तुमको नाश कर देगा; किसी को कुछ करना न पड़ेगा।

राजरानी रामऔतार के इन भावों को पहचान न सकी। दुर्गा के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें उड़ानेवालों पर ही उसका लक्ष्य बढ़ता गया। उत्तरोत्तर क्रोध में आकर राजरानी कहने लगी—मेरा अहङ्कार नहीं, उनका पाप! कहने वालों का पाप! किसी को बदनाम करनेवालों का पाप! मेरा नाश न होगा, उन्हीं का नाश हो जायगा।

रामऔतार ने क्रोध में कहा—तुम्हारा नाश होने को नहीं है, आँखें खोलकर देखो, जो होने को था, हो चुका है अपने अहङ्कार को दूर करो। तुम्हारा अहङ्कार ही तुमको देखने नहीं देता।

राजरानी की समझ में कुछ न आया। रामऔतार की बातों को सुन कर उसका क्रोध बढ़ता ही गया। अपने क्रोध और आवेश में, सिर पीट-पीटकर वह कहने लगी—आज तुमको भी किसी ने पट्टी पढ़ाई है। मेरी शत्रु किस सत्यानाशिन ने तुमको समझा-बुझा कर भेजा है! दुनिया तो मेरे पीछे पड़ी ही है। क्या तुमने भी आज से यही निश्चय किया है!

राजरानी रोने-चिल्लाने और ज़मीन पर हाथ पटकने लगी। रामऔतार ने कुछ भी उत्तर न दिया। वे चारपाई पर चुपचाप लेटे रहे। रामऔतार के कुछ देर तक न बोलने पर राजरानी रो-रो

कहने लगी—जो मेरा बुरा देखे, जो मेरे घर में आग लगावे, राम उसका नाश हो—उसके घर से मुर्दे उठें !

राजरानी की इन बातों को सुन कर रामऔतार को क्रोध आ गया। उनसे अब लेटे न रहा गया। वे चारपाई से उठे और क्रोध में आकर उन्होंने राजरानी को मारने की कोशिश की; परन्तु उसी समय दुर्गा ने दौड़कर उनको पकड़ लिया। दुर्गा के हाथ-पैर जोड़ने पर रामऔतार फिर लौट कर चारपाई पर बैठ गये। राजरानी का रोना बन्द हो गया। रामऔतार ने दुर्गा से कहा—बेटी तुम अब सयानी हो, सब कुछ समझती-बूझती हो, मैं तुमसे क्या कहूँ। इसने ही सारी आग लगाई है। इसी ने विष का बीज बोया है। अपनी बेवकूफी से हम इसकी हाँ-में-हाँ मिलाते रहे। इसका नतीजा यह हुआ है कि आज हम कहीं मुँह दिखाने के लायक नहीं रहे। यह फिर भी अपने अपराध को मानने के लिए तैयार नहीं है ?

रामऔतार की बात सुनकर दुर्गा ने राजरानी से कहा—अम्मा तुम सब से लड़ती हो—सब को बुरा-भला कहती हो, और तो किसी की सुनती ही नहीं हो; जब चाचा कुछ कहते हैं तो दूसरों की भाँति तुम उनकी भी परवाह नहीं करती हो। तुम अपने क्रोध को छोड़कर उनसे बातें करो; देखो तो वे क्या कहते हैं।

राजरानी ने कुछ भी उत्तर न दिया। दुर्गा की बात सुनकर रामऔतार ने कहा—वह हमारी बात न सुनेगी, उसने तो हमको घर का कुत्ता समझ रक्खा है। यह सब हमारी ही मूर्खता है। हमने जितनी ही इसकी बात मानी है, उतनी ही हमारी हानि हुई है।

राजरानी ने आँसू पोंछते हुए कहा—मैंने तुम्हारी क्या हानि की है, मैंने तुमको क्या नुकसान पहुँचाया है।

कुछ ठहर कर रामऔतार ने कहा—तुमने क्या हानि की और क्या नुकसान पहुँचाया है, इसको तुम नहीं समझ सकती। मेरी अवस्था बड़ी भयानक हो गई है। मैं काम करने जाता हूँ, परन्तु जी नहीं लगता। रात को बड़े-बड़े भयानक स्वप्न देखता हूँ। घबराता हूँ। छटपटाता हूँ, नींद खुल जाती है; फिर सारी रात जाग कर भोर करना पड़ता है। रात-दिन चिन्ता के मारे घुला जा रहा हूँ। यदि ऐसी ही दशा रही तो हमारी जिन्दगी अब बहुत नहीं है।

दुर्गा और राजरानी इन बातों को चुपचाप सुन रही थीं। हृदय में उठती हुई पीड़ा को दबाकर रामऔतार ने फिर कहा—दुर्गा के विवाह में सारा उत्पात तुम्हारा है। दुर्गा की ससुराल-वाले, दुर्गा के साथ ब्याह न करना चाहते थे, उन्होंने हमको लिखा। हमने इस बात को स्वीकार भी किया; परन्तु तुमने और का और ही किया; इसका भयानक परिणाम यह हुआ कि दुर्गा आज हमारे घर में बैठी है। उन्होंने हमको बुलाकर सब बातें कहीं। हम उन बातों का क्या जवाब देते! दुर्गा का सारा जेवर उतार कर और मामूली कपड़े पहनाकर उन लोगों ने हमारे साथ भेज दिया।

इतना होने पर भी तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। तुम्हारी झूठी बातें—तुम्हारे झूठे आडम्बर बढ़ते ही गए। दुर्गा के लौट आने पर तुमने सत्य को छिपा कर और का और ही प्रकट किया। इतनी बड़ी बात कैसे छिपाई जा सकती थी। उसका वही फल हुआ जो होना चाहिए था। हमने बड़ी मूर्खता की है। किसी बात का

हमने विचार नहीं किया। यद्यपि इस बात को हम न समझे थे कि इसका परिणाम इतना भयानक होगा! हमारा खयाल था कि कुछ दिनों के बाद उनका क्रोध ठंडा हो जायगा। हम भी उनके हाथ-पैर जोड़ेंगे। दुर्गा को लिवा ही जायँगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। हमारा विचार ठीक न निकला। छःसात महीने हुए, हम वहाँ जब गये थे और वहाँ जाकर जो कुछ देखा था, उससे भी हमको कोई आशा न होती थी। वे बड़े आदमी हैं, पैसे वाले हैं, उनके लड़के का ब्याह करने के लिए न जाने कितने लड़की वाले मुँह खोले हुए फिर रहे हैं। हम वहाँ से अपना-सा मुँह लेकर लौट आये थे। आज कई महीनों से यहाँ पर जो बातें उड़ रही हैं, वे बिल्कुल झूठ नहीं हैं। उनको झूठ किया भी नहीं जा सकता। अब बताओ हमारी अवस्था क्या है।

राजरानी दीर्घ निःश्वास छोड़कर चुप हो रही। उसकी आँखों का पर्दा हट गया। रामऔतार ने जो कुछ कहा, उसको उसने ध्यान से सुना। जिस भयानक परिणाम का उन्होंने जिक्र किया, उसको राजरानी आँखों से देखने लगी। राजरानी का हृदय अधीर होने लगा। उसका क्रोध न जाने कहाँ उड़कर चला गया। उसके हृदय का छल और आडम्बर उसके हृदय की व्याकुलता के रूप में बदल गया। राजरानी के हृदय में जिस प्रकार की वेदना होने लगी, उसको वह कह न सकी! उसकी आँखों में आँसू भर आए।

रामऔतार ने फिर कहा—और सुनो, जो कुछ हुआ सो हुआ, लेकिन हमें यह बताओ, अब दुर्गा का क्या होगा। हमारी अवस्था वृद्ध हुई, जितने ही दिन और चलें, उतने ही दिन। हमारे बाद, हमारे आगे-पीछे और कोई नहीं है। यही नहीं,

दुर्गा की अवस्था बीस वर्ष की हो चुकी, यह अब हमारे घर के लिए नहीं है। इसकी शोभा अब हमारे घर में नहीं है, परन्तु अब इसका हमारे पास उपाय क्या है। जवान लड़की को हम अब पेट में पचा नहीं सकते; तब हो क्या? कितनी भीषण अवस्था है। हमारे सामने कितना भयानक जीवन है।

रामऔतार का गला भर आया, कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आँखों में आँसू आ गये। रामऔतार अधिक बोल न सके, वे चुप हो गये। राजरानी फूट-फूटकर रोने लगी, दुर्गा अपने आप को सम्हाल न सकी। राजरानी के साथ-साथ दुर्गा भी अपना मुँह छिपाकर रोने लगी।

कुछ देर में रामऔतार ने अपने आँसुओं को पोंछकर कहा—बेटी दुर्गा, तुम रोओ नहीं, आँसू न बहाओ। यह हमारे पापों का परिणाम है। विष के बीज हम लोगों ने बोये हैं उनका भोग हम लोगों को तो करना ही होगा। तुम, तुम निरपराध हो, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा।

रामऔतार की इन बातों से राजरानी का हृदय काँप उठा। वह अपने आप को अधिक सम्हाल न सकी, चीख़ मारकर रो उठी, दुर्गा भी रोने लगी। रामऔतार ने अपना मुँह किसी कपड़े में छिपा लिया और हिचकियाँ लेने लगे। जो घर क्रोध, अहङ्कार और आडम्बर से परिपूर्ण हो रहा था, वह बात की बात में श्मशान के रूप में दिखाई देने लगा।

———

सत्रहवाँ परिच्छेद

यह काला-काला कौन है—इतना भयानक यह कौन हमारे मकान में चला आता है ! इसका मुँह कितना भीषण है—इसके दाँत कितने बड़े हैं ! यह भीमकाय—भयावह मूर्ति हमारी ओर क्यों आरही है ! देखते ही देखते रामऔतार के प्राण सूखने लगे !

जितना ही वह पास आता गया, उतना ही वह भयानक होता गया। उसके विशाल और उद्दीप्त नेत्रों के सामने रामऔतार को देखने की हिम्मत न पड़ती, भयभीत होकर, अपने नेत्रों को नीचा कर लेना चाहा, परंतु रामऔतार ऐसा कर न सके। घबराकर उन्होंने आस-पास देखा, दाहिने-बायें देखा, परंतु कहीं कोई दिखाई न पड़ा ! रामऔतार के सामने आकर वह बैठ गया और रामऔतार के हाथों की दोनों कलाइयों को उसने अपने हाथों से ज़ोर से पकड़ लिया। रामऔतार का हृदय काँप उठा। घबराकर उन्होंने चिल्लाना चाहा, परंतु गले से आवाज़ न निकली। उसने अपने पकड़े हुये कठोर हाथों से रामऔतार की कलाइयों को ज़ोर से दबाना आरम्भ किया, रामऔतार के हाथों में पीड़ा होने लगी ! उन्होंने अपने हाथों को छुड़ाने का प्रयत्न किया, परन्तु वे अपने हाथों को हिला भी न सके ! उनको मालूम होता था कि हमारी कलाइयों को मानों कोई लोहे की सनसी से ज़ोर से पकड़े हुए है। थोड़ी देर में उसने रामऔतार की कलाइयों को और भी ज़ोर से दबाया। उस समय उनको ऐसा मालूम हुआ कि हमारे हाथों की नाड़ियाँ मानों टूटी जारही हैं और हमारी दोनों कलाइयों के बीच

में उसकी तीव्र और कठोर उँगलियाँ छेद किए देती हैं। वेदना के मारे रामऔतार के प्राण निकलने लगे! उन्होंने फिर चिल्लाना चाहा, परन्तु गले से आवाज़ बाहर न निकल सकी। कष्ट और यंत्रणा के मारे रामऔतार छटपटाने लगे! अब उनका कोई उपाय न था! वे गिर गये और कटे हुए बकरे की भाँति कलछने लगे! उस भीमकाय राक्षस ने रामऔतार के वक्षस्थल पर अपने पैर का घुटना रक्खा और ज्यों ही जोर से दबाया, रामऔतार को मालूम हुआ मानों प्राण निकल गये! उनके मुँह से आह के सिवा और कुछ न निकल सका!!

अचानक दुर्गा चिल्ला उठी, अम्मा, ओ अम्मा, देखो चाचा को क्या होगया!

राजरानी छटपटाकर उठी और रामऔतार के पास जाकर उनका सिर पकड़कर बोली—क्यों, क्या बात है?

रामऔतार चौंक पड़े, उनकी आँखें खुल गयीं, उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे। राजरानी ने पीठ पर हाथ रखकर पूछा—क्यों चिल्ला रहे थे, क्या बात है?

रामऔतार बड़ी देर तक राजरानी की ओर देखते रहे, उनके मुँह से कोई बात न निकली। उसके बाद आँखों के आँसू पोंछकर उन्होंने आस-पास देखा, पास ही दुर्गा खड़ी थी और अपने हाथ में लालटेन लिये थी। रामऔतार ने गहरी साँस लेकर कहा—न जाने कितना भयानक सपना देखा है! ओह!

राजरानी ने रामऔतार की बात सुनी, उसके मुँह से कुछ न निकला। उसने देखा, रामऔतार की साँस अब भी जोर से चल रही है! भय चिंता और वेदना के चिह्न अब भी उनके मुख-मण्डल पर मौजूद हैं। रामऔतार ने पूछा—कितनी रात होगी?

राजरानी ने आसमान की ओर देखकर कहा—बारह-एक बजा होगा।

'आह, अभी बहुत रात है, कैसे इतनी बड़ी रात कटेगी' कहकर रामऔतार ने जमुहाई ली और कुछ ठहरकर सपने की एक-एक बात वे बताने लगे। राजरानी उन बातों को सुनने लगी। दुर्गा भी पास ही बैठी थी। बातें करते-करते सारी रात बीत गई, सवेरा होने पर रामऔतार की आँखें कडुआ रही थीं।

सबेरे आठ बजे के लगभग राजरानी अपने घर से गयी, और थोड़ी ही देर में एक पण्डित को लिवाकर आगयी। पण्डित महाशय उस घर के लिये कोई अपरिचित व्यक्ति न थे, उनकी अवस्था लगभग पचास वर्ष की थी। पण्डित को आते हुए देखकर रामऔतार ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। नमस्कार कहते हुए पण्डित रामऔतार की ओर बढ़े और पास जाकर पूछने लगे, कहिए आज कैसे बुला भेजा ?

रामऔतार चारपाई में एक ओर खिसक गये और चारपाई के सिरहाने पण्डित को बैठा कर कहने लगे—इधर तो बहुत दिनों से आप से मिलना ही नहीं हुआ। कितनी ही बार आपसे बातें करने को जी चाहा, लेकिन न मिल सका।

पण्डित ने हँसकर कहा—गृहस्थी के ऐसे ही झगड़े हैं, जो जहाँ पर है वहीं पर फँसा है।

रामऔतार ने कुछ ठहर कर कहा—हमारे घर का तो सब हाल आप सुनते ही होंगे। क्या बतावें पण्डित, जैसा कुछ हुआ है कुछ कहने की बात नहीं है।

पंडित महाशय रामऔतार के भावों को पहचान गए। उन्होंने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—जो होनहार होता है,

होता ही है। जो बात जिसके भाग्य में लिखी है, वह मिट नहीं सकती।

पण्डित महाशय कुछ और कहना चाहते थे, परन्तु राम-औतार बीच ही में बोल उठे—हमसे कुछ बन न पड़ा, अपनी भूल के लिये अब हम आप से क्या कहें, उसका जो कुछ फल हुआ है वह आपसे कुछ छिपा नहीं है।

रामऔतार ने अपने एक हाथ से, आँखों में आये हुए आँसुओं को पोंछा और वे चुप हो रहे। पण्डित ने कहा—गुज़री हुई बात का सोच करना वृथा है, उसका जो कुछ होना था, हो चुका; इसलिए उसके सम्बन्ध में अब रञ्ज करने से कोई लाभ नहीं है।

'यह तो ठीक है' गहरी साँस लेकर रामऔतार ने कहा—लेकिन सिर पर जवान लड़की बैठी है, अब उसका क्या होगा? हम लोग वृद्ध हुए, जब तक जीते हैं, कुछ दिन कटे जाते हैं, लेकिन हम लोगों की अब जिन्दगी ही कितनी है!

रामऔतार की बातों को सुनकर अपना सिर हिलाते हुए पण्डित ने रामऔतार की बातों का समर्थन किया। कुछ देर तक चुप रहकर रामऔतार ने कहा—अभी हम बहुत कमज़ोर न थे, मज़े में कमाते-खाते थे, लेकिन जब से यह सिर पर विपद पड़ी है, खाना-पीना भूल गया है। मारे चिन्ता के किसी काम में जी नहीं लगता। शरीर दिन-पर-दिन घुलता जाता है।

रामऔतार चुप हो गये। पण्डित महाशय ने कहा—यह तो होता ही है, जब अपनी सन्तान को कुछ दुख होता है, तब माता-पिता की यही दशा होती है। आपने तो देखा है, राधेलाल जवान लड़का मर गया। उसकी माँ रो-रोकर अन्धी हो गयी। राधेलाल

जबतक बना था, उसके पिता का कुछ भी न बिगड़ा था, परन्तु राधेलाल के मर जाने पर उसके पिता को कुछ ऐसा सन्ताप हुआ कि वे बराबर बीमार रहने लगे और कुछ दिनों के बाद वे मर ही गये। तो बात यह है कि माता-पिता का हृदय कुछ परमात्मा ने ऐसा बनाया है कि वे अपनी सन्तान का दुख देख नहीं सकते।

रामऔतार चुपचाप इन बातों को सुन रहे थे। राजरानी और दुर्गा भी पास ही बैठी थीं। पण्डित के चुप होजाने पर राजरानी ने कहा—पण्डित महाराज, मैं तुमको इसलिए बुला लाई हूँ कि हमारी विपद में कुछ सहायता करो। और जो कुछ था सो तो था ही, एक अठवारा हुआ रोज़ ये न जाने कैसे-कैसे सपने देखते हैं। सपना देखते-देखते चिल्ला उठते हैं और फिर सारी रात इनको नींद नहीं आती। आज सारी रात बैठकर हमलोगों ने भोर किया है, इसलिए तुमको मैं लिवा लाई हूँ कि कुछ विचारकर बताओ।

पण्डित महाशय रामऔतार की ओर बार-बार देखने लगे। रामऔतार ने कहा—आज आठ-दस दिन से हमारी यह हालत हो रही है, इसके पहले यह बात न थी। जब से सुना है कि दुर्गा जिसको ब्याही थी उस लड़के का दूसरा ब्याह कर लिया गया है; तब से न जाने क्या हमको हो गया है। चाहे चार दिन खाना हम न खायें, फिर भी हमको भूख नहीं लगती। काम पर जाना बन्द कर दिया है, घर में ही रात दिन पड़े रहते हैं। कहीं जाने-आने को जी नहीं चाहता। रात को ऐसे-ऐसे भयानक सपने देखते हैं कि पण्डित, हम आप से क्या कहें। रात को जो हमने सपना देखा है, उससे अब तक हमारा दिल धड़क रहा है।

पंडित ने कहा—जब कोई चिन्ता शरीर में बैठ जाती है तो यह दशा होती है। अपने जी को कुछ कड़ा करो और चिन्ता

को कम करने की कोशिश करो; इसी से सब शान्त हो जायगा।

राजरानी ने हाथ जोड़कर कहा—पंडित महाराज, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, पैरों पड़ती हूँ—इनके लिए कुछ उपाय बताओ। अब जी बहुत घबरा रहा है।

पंडित महाशय ने कुछ सोचकर कहा—घबराने से काम नहीं चलेगा, जब कोई विरुद्ध परिस्थिति मनुष्य के ग्रह-दशा के कारण आती है तो मनुष्य को भोग करना ही होता है; परन्तु जब कोई बात अधिक बढ़ जाती है तो उसको शान्त करने के लिए उपाय भी बताये गये हैं। पहले आप अपने स्वप्नों की बातें हमको बता जाइये, उसके बाद फिर हम आपको उपाय बतावें।

रामऔतार ने अपने कई दिनों के स्वप्नों की चर्चा की और पिछली रात में जो भयानक दृश्य देखा, उसको एक-एक बात समझाकर बता दी।

पंडित महाशय कुछ देर तक विचार करते रहे और फिर बोले—पहले अपने मन को आप शान्त करिये। भय, चिन्ता और शोक को भूलकर मन को प्रसन्न करनेवाली बातों को पैदा करिए। इसके सिवा किसी अच्छे दिन काले तिल, काली उर्द, काला कपड़ा, इनमें से किसी चीज का दान कर दीजिये। ईश्वर चाहेगा तो ये सब उपद्रव इससे शान्त हो जायँगे।

कुछ देर बातें करके पंडित महाशय चले गये। राजरानी ने पंडित की आज्ञानुसार दान भी कर दिया और उसके बाद इस बात की वह आशा करने लगी कि इससे अवश्य ये बातें बन्द हो जायँगी। कई दिन बीत गये। एक दिन दोपहर को रामऔतार ने राजरानी को बुलाकर कहा—जिस दिन से करुणा हमारे घर से गयी है, कोई समाचार उसका नहीं मिला। हमारे जी में आता है

कि शीघ्र ही उसका समाचार लेना चाहिए। इसमें तुम्हारी क्या सलाह है?

'हाँ यह तो ठीक है, मैं भी यही सोच रही थी, लेकिन वहाँ जाने के लिए क्या करोगे। तुम्हारा जी नहीं अच्छा, फिर वहाँ कैसे जा सकते हो।' कहकर राजरानी रामऔतार की ओर देखने लगी।

रामऔतार कुछ न बोले। वे मन-ही-मन कुछ सोचने लगे। राजरानी ने फिर कहा—तुम न जाकर एक चिट्ठी छोड़ दो तो कैसा हो?

रामऔतार—चिट्ठियों से इस प्रकार के काम नहीं होते। इसके लिये हमें वहाँ जाना चाहिये। परन्तु यह हो सकता है कि इस समय हम एक चिट्ठी भेज दें और तबीयत कुछ अच्छी हो जाने पर हम चले जाँय।

राजरानी ने इसको स्वीकार कर लिया। उसी दिन करुणा के पास चिट्ठी लिखकर भेज दी गयी। उस दिन के बाद दुर्गा जब वहाँ गयी, सभी घरों में उसने चर्चा की कि चाचा ने करुणा के यहाँ चिट्ठी भेजी है और जल्दी ही वे उसको लिवाने जायँगे। काश्मीरी मुहाल के अनेक घरों में करुणा के बुलाये जाने की बात फैल गयी।

कई दिनों के बाद रायबरेली से पत्र आया। वह पत्र करुणा का लिखा हुआ न था। जो पत्र आया वह रामऔतार के उत्तर में ओंकारनाथ का भेजा हुआ पत्र था। उसमें लिखा था, एक वर्ष से अधिक होगया, लोकनाथ यहाँ से लड़भिड़ कर अपनी स्त्री के साथ कहीं चले गये हैं। उसके बाद फिर हमें आज तक उनका कोई पता नहीं मिला।

ओंकारनाथ का पत्र पढ़कर, रामऔतार के मुँह से कोई बात न निकली। राजरानी भी ने उस समय कुछ बातचीत न की। ऐसा मालूम होने लगा कि रामऔतार के हृदय में शोक-सन्ताप की जो ज्वाला उठ रही थी, ओंकारनाथ का पत्र आने पर उसमें थोड़ी सी वृद्धि हो गयी।

काश्मीरी मुहल्ले के जिन घरों में करुणा के बुलाए जाने का समाचार फैला था। उन्हीं घरों में समय-समय पर अब ये बातें होने लगीं कि करुणा का कहीं पता नहीं है।

अठारहवाँ परिच्छेद

मोतीचन्द के मकान में अनेक स्त्रियाँ उपस्थित हैं। घर के नौकर-चाकर तरह-तरह के कामों में व्यस्त हैं। करुणा जिन स्त्रियों के पास बैठी है, उनमें किसी को वह पहचानती नहीं है। सभी स्त्रियाँ एक-दूसरे से बातें कर रही हैं, परन्तु करुणा चुपचाप है। सुरजा, करुणा को बराबर देखती और मन-ही-मन कुछ सोचती।

मकान के बाहरी कमरे में कई एक आदमी बैठे हुए बातें कर रहे थे, जिस कमरे में वे लोग बैठे थे; वह घर के भीतरी भाग से बहुत अलग न था। जो लोग बातें करते थे उनमें शिवदयाल की आवाज़ जोर से सुनाई पड़ती थी। बीच-बीच में लोकनाथ की बातें भी सुनाई दे जाती थीं। उनमें क्या बातें हो रही थीं यह तो भीतर स्त्रियों को सुनाई न पड़ता था; किन्तु बात-बात में शिवदयाल का अट्टहास मकान-भर में गूँज उठता था।

स्त्रियों के कुछ खा-पी चुकने के बाद सुरजा, करुणा से बातें

करने के लिए उत्सुक-सी होने लगी। करुणा, सुरजा के इस भाव को समझती न थी, करुणा उसको पहचानती भी न थी; परन्तु सुरजा बीच-बीच में जब मौका पाती थी, कुछ इस प्रकार बोल देती थी जिससे मालूम होता था कि वह या तो करुणा के साथ बहुत सहानुभूति रखती है अथवा उसके साथ अपना परिचय स्थापन करना चाहती है। कई बार सुरजा की सहानुभूति पूर्ण बातों से करुणा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सुरजा जो कुछ कहती, करुणा बड़ी नम्रता के साथ उसको स्वीकार करती।

बीच-बीच में करुणा के साथ कई एक बातें करके सुरजा बड़ी प्रसन्न हुई। जहाँ स्त्रियाँ बैठी थीं, सुरजा करुणा से बातें करती हुई वहाँ से पास ही एक दूसरे कमरे में वह उसको लिवा गयी। वहाँ पहुँचते ही सुरजा एक निवाड़ के पलँग पर बैठ गयी। करुणा को भी उसी पलँग पर बिठाकर उसने पूछा—बहू, तुम कहाँ की रहने वाली हो?

करुणा—मेरा मायका लखनऊ है।

आह, लखनऊ कितना सुन्दर शहर है! बहू वहाँ तुम्हारा किस मुहल्ले में घर है?

'काश्मीरी मुहल्ले में!' करुणा ने जल्दी से उत्तर दिया।

सुरजा—ओहो, काश्मीरी मुहल्ला! फिर क्यों न हो। अच्छा तुम यहाँ कानपुर में कहाँ रहती हो?

करुणा—पटकापुर में।

सुरजा—पटकापुर में! पटकापुर में किराये का मकान लिया होगा?

'हाँ, किराये पर मकान लिया है' कहकर करुणा ने सुरजा को उत्तर दिया।

'किराये के मकानों में तो बड़ी तकलीफ़ें होती हैं सुरजा ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा—चाहे जितना किराया दिया जाय, पराया मकान पराया ही है, अपना अपना ही है। तुमको तो बहू उसमें कष्ट होता होगा। कितना भाड़ा देती हो ?

'पाँच रुपया महीना' कहकर करुणा चुप होगयी।

पाँच रुपया महीना ! भला पाँच रुपये में कानपुर में मकान ही क्या मिल सकता है। बहू, तुमको तो देखकर मालूम होता है कि तुम किसी बड़े रईस की बेटी हो। क्या तुम्हारा ब्याह जहाँ हुआ है, वे कुछ ग़रीब हैं ?

'हाँ, हम लोग गरीब आदमी हैं' करुणा ने उपेक्षा भाव से उत्तर दिया।

लेकिन बहू, ईश्वर ने तुमको गरीब नहीं बनाया। ग़रीब के लिए नहीं बनाया। उसने तो तुमको ऐसा बनाया है कि तुम ज़मीन पर पैर न रखो। सैकड़ों हजारों नौकरों-चाकरों पर हुक्म करो, सोने और जवाहरात से लदी रहो।

करुणा ने कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप बैठी रही। यह देखकर सुरजा ने फिर कहा—बहू, क्या तुमको धन की इच्छा नहीं होती ?

करुणा—नहीं।

सुरजा ने आश्चर्य के साथ करुणा की ओर देखकर पूछा—ऐसा क्यों, भला दुनियाँ में ऐसा कौन होगा जो धन न चाहता हो, बिना धन के सुख नहीं हो सकता। जब सुख नहीं है तो कुछ नहीं है। फिर तुम ऐसा क्यों कहती हो !

करुणा ने फिर कुछ उत्तर न दिया। उसको चुप देखकर सुरजा फिर कहने लगी—बहू, तुम किसी बात का संकोच न

करो, मैं तुम्हारी ही हूं, तुमको देखकर मुझे बहुत दया मालूम होती है। मैं चाहती हूँ कि जितनी तुम सुन्दरी हो, उतनी ही तुम भाग्यवान् भी बनो। तुम्हारी अभी उम्र ही क्या है लड़कपन में डर और संकोच होता ही है!

करुणा ने आश्चर्य चकित होकर सुरजा की तरफ देखा। लगभग चालीस वर्ष की वह प्रौढ़ा स्त्री है, उसका यौवनकाल समाप्त हो चुका है, शरीर ढीला पड़ गया है, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हैं, बातचीत में वह बहुत चतुर है, उसकी बातों में अब करुणा का मन न लगा। उसने घूमकर उस ओर देखा जिधर, मकान के जिस भाग में स्त्रियाँ बैठी थीं, वहाँ कोई स्त्री दिखाई न पड़ी। करुणा का हृदय अकस्मात् घबरा उठा। सुरजा ने उसको और भी बैठाना चाहा, परन्तु करुणा बैठ न सकी। उठकर वह उस दरवाज़े की ओर बढ़ी जिससे होकर वह उस कमरे में आयी थी। उसके आगे बढ़ते ही मोतीचन्द ने कमरे में प्रवेश किया। करुणा देखते ही सहम उठी, वह तुरन्त पीछे हट गई। मोतीचन्द ने और आगे बढ़कर करुणा से कहा—बैठिये, मेरे आते ही आप क्यों भागने लगीं?

'नहीं मैं अब जाऊँगी। मुझे रोको मत' कहकर करुणा फिर दरवाज़े की ओर बढ़ी, किन्तु दरवाज़े का मार्ग मोतीचन्द ने रोककर कहा—मैं आप से बातें करने आया हूं। अभी तक बैठी हुई आप बातें करती रहीं। मेरे आते ही क्यों जाने का विचार किया?

करुणा मोतीचन्द को देखकर भयभीत हो उठी, उसने देखा कमरे में वह स्त्री नहीं है जो मुझ से अब तक बातें करती रही

है। उसका भय और भी बढ़ गया। कातर कण्ठ से उसने कहा—वे सब स्त्रियाँ कहाँ गईं, मुझे जाने दो, मैं अकेले न रहूँगी?

मोतीचन्द ने आगे बढ़कर कर-स्पर्श करना चाहा, यह देखकर करुणा और भी पीछे हट गई। मोतीचन्द ने पीछे का दरवाज़ा बन्द कर दिया, यह देखकर करुणा काँप उठी। कमरे की दीवारों में कई एक खिड़कियाँ थीं उनसे बन्द होने पर भी कमरा काफ़ी प्रकाशवान था। मोतीचन्द के भयानक मुख को देखकर करुणा अत्यन्त भयभीत हो उठी। क्षण-भर में उसने अनेक बातों को सोच डाला। उसने सोचा, यहाँ आना मेरा अच्छा नहीं हुआ, मैं आती न थी परन्तु होनहार मुझे खींचकर ले आया। मोतीचन्द ने उसी समय कुछ कहा, परन्तु करुणा उसे समझ न सकी।

भयभीत नेत्रों से वह मोतीचन्द की ओर देखने लगी। आज इस सङ्कटपूर्ण अवस्था से बचने का उपाय क्या है—आज मेरी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी। करुणा का भयभीत हृदय बार-बार सोचने लगा। मोतीचन्द के साँवले और स्थूल शरीर में करुणा एक राक्षस का दर्शन करने लगी।

मोतीचन्द ने कहा—घबराओ नहीं। घबराने की कोई बात नहीं है। मैं तुमसे दो-चार बातें करना चाहता हूँ उसके बाद तुम चली जाना।

करुणा ने कम्पित स्वर में कहा—फिर आपने दरवाज़ा क्यों बन्द कर दिया है? दरवाज़ा खोल दीजिये।

'दरवाज़ा बन्द होने से तुम्हारी कुछ हानि नहीं है' मोतीचन्द ने कहा—जिस दिन से हमने तुमको देखा है, उसी दिन से मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूँ। जिस दिन तुम्हारे मकान जाकर तुम्हारे इस रूप का हमने दर्शन किया है, उसी दिन से हम तुम्हारे लिए

पागल होगये हैं। हमें ईश्वर ने बहुत धन दिया है, बड़ी-से-बड़ी रियासत दी है, बहुत बड़ा ऐश्वर्य दिया है, हमारा ऐश्वर्य आज हमको भूल रहा है, हमारे इस पागल चित्त को कई दिनों से कहीं शान्ति नहीं मिलती। मैं तुम्हारा प्रेम चाहता हूँ, तुम रूपवती हो, अपना सारा ऐश्वर्य तुम्हारे चरणों पर निछावर करना चाहता हूं !

करुणा ने हाथ जोड़कर कहा—आप रईस हैं, बड़े आदमी हैं, मेरे पिता के तुल्य हैं, आप ऐसी बातें न कीजिये। मैं आपकी लड़की हूँ, मेरी रक्षा करने में ही आपका यश है।

मोतीचन्द ने टकटकी लगाकर करुणा के मुख को देखा। करुणा उनके नेत्रों को देखकर बहुत घबराने लगी। उनके लाल वर्ण नेत्र, उनका आभाहीन मुख-मण्डल देखकर करुणा का एक-एक अङ्ग काँपने लगा। मदिरा की मादकता में, वासना की उन्मत्त भावनाओं से प्रेरित होकर मोतीचन्द ने कहा—प्यारी आओ, अब हमें दुखी न करो। मैं तुम्हारे रूप के लिए मछली की तरह तड़प रहा हूँ, आओ-आओ। मेरे हाथों में आजाओ। मेरी यह लाखों रुपए की सम्पत्ति स्वीकार करो, तुम्हें छोड़कर अब मेरे कोई नहीं है !

'छीः इस प्रकार की बात न करो, ईश्वर को डरो, धर्म को डरो, मैं तुम्हारी लड़की हूं, अपनी लड़की के साथ ऐसा विचार न करो,' कह कर करुणा ने अनेक प्रकार की प्रार्थना की।

मोतीचन्द जितना ही करुणा को देखता था, उतना ही वह वासना से उन्मत्त होता जाता था, उसकी आँखों में धर्म का डर न था, ईश्वर का भय न था। वह काम से पीड़ित होकर, वासना से उन्मत्त होकर, जिस रूप पर पागल हो रहा था,

उसे प्राप्त करने के लिए आँखें होने पर भी वह अंधा हो रहा था—कान होने पर भी वह बहरा हो रहा था; करुणा की प्रार्थना उसके हृदय में प्रवेश न करती थी !

मोतीचंद ने एकाएक बढ़कर करुणा के गले में हाथ डालना चाहा, करुणा अपने स्थान से हट गयी और ज़ोर से डपट कर कहा—नीच, नराधम, दूसरे की स्त्री को स्पर्श करता है, तेरे हाथों में कुष्ट रोग हो जायगा !

करुणा की यह बात सुन कर मोतीचंद चौंक पड़े। उनको अपने अपमान का बोध हुआ। क्रोध में आकर करुणा को डाँटते हुए उन्होंने कहा—शैतान की बच्ची, तेरी आँखें अभी बंद हैं ! अपने इस रूप पर इतराती है, तू अभी इस बात को नहीं समझती कि तेरे सामने कितना बड़ा आदमी खड़ा है। तेरी तरह हसीन लड़कियाँ अपने रूप और यौवन की मुझ पर भेंट करने आती हैं !

'उन भेंटों को लेकर तुम सुखी होओ—प्रसन्न होओ, परन्तु मेरे साथ इस प्रकार का विचार छोड़ दो'। साहस के साथ करुणा ने कहा।

मोतीचन्द—तुम ऐसी बातें न कहो।

करुणा—क्यों न कहूँ।

मोतीचन्द—तुम न कहो, मैं तुम्हारे रूप का प्यासा हूं। तुम्हारे शरीर के इस मतवाले यौवन का मैं भोग करूँगा !

करुणा—तुम्हारा यह पाप है !

मोतीचन्द—कुछ भी हो, मैं तुमको चाहता हूँ—तुमको पाकर ही रहूंगा। मेरी यह सारी धन-दौलत तुम्हारे लिए निछावर है!

'तुम्हारे मन के ये पाप, तुम्हारा नाश करेंगे।' करुणा ने उत्तेजित होकर कहा।

मोतीचन्द—मेरा नाश! मेरा नाश! मेरा कौन नाश कर सकता है?

करुणा—कोई किसी का नाश नहीं करता, मनुष्य का पाप ही मनुष्य का नाश कर देता है!

करुणा की किसी भी बात का मोतीचन्द पर कुछ प्रभाव न पड़ता। काम और वासना के उन्मत्त भावों से पागल होकर मोतीचन्द ने कहा—प्यारी, मैं तुम्हारे लिए तड़प रहा हूँ। मुझपर तुमको तरस नहीं आता! यह सोने की रियासत लेकर, तुम राजरानी क्यों नहीं बनतीं!

राक्षस! राक्षस! मुँह से इस प्रकार की बात निकालता है! मुँह सड़ जायगा, मुँह में कीड़े पड़ेंगे। कहीं के पापी! नीच! कह कर अपने आवेशपूर्ण नेत्रों से करुणा मोतीचन्द की ओर देखने लगी।

इतना अहंकार, इतना घमंड, इतनी बड़ी शेखी! मैं अभी मना रहा हूँ लेकिन यदि चाहूँ तो दो मिनट में......।

'किसी सती स्त्री के लिए इस प्रकार के शब्द कहते हुए तुझे लज्जा नहीं आती नीच! पापी! नराधम!' कहकर करुणा ने इधर-उधर देखा, कहीं से उसको निकलने, भागने का मार्ग दिखायी न पड़ा।

'और यदि हम बलात्कार करें तो!' मोतीचन्द ने क्रोध के साथ कहा।

करुणा ने तेजी के साथ उत्तर दिया—तुममें शक्ति नहीं है—तुममें बल नहीं है!

मोतीचन्द—क्यों, क्या तुझको फिर भी अपनी रक्षा का घमण्ड है ?

करुणा—घमण्ड ! घमण्ड नहीं है, विश्वास है !

मोतीचन्द—किस बात का ?

करुणा—अपनी रक्षा का !

मोतीचन्द—तुम्हारी रक्षा कौन कर सकता है ?

करुणा—मेरा धर्म, मेरा सत्य ! धर्म में वह बल है, सत्य में वह शक्ति है कि जिसके सामने किसी का कुछ बस नहीं चलता !

'इतना घमण्ड ! इतना अहंकार !' कहकर मोतीचन्द बिजली के समान तड़पे और करुणा के दोनों हाथों को उन्होंने ज़ोर से झपटकर पकड़ लिया। करुणा ने अपनी शक्ति-भर ज़ोर लगाकर अपने आपको छुड़ाने की चेष्टा की परन्तु वह छूट न सकी ! अपनी चेष्टा को असफल होते हुए देखकर करुणा भय और कातर कंठ से चित्कार कर उठी—नीच, पापी, यह क्या ! अरे दौड़ो, अरे कोई बचाओ, राक्षस से बचाओ, स्त्री का सतीत्व, नारी का धर्म ! भगवान रक्षा करो, रक्षा करो ! अनाथ नारी का धर्म लुट रहा है ! रक्षा करो ! सती का सतीत्व भ्रष्ट हो रहा है। रक्षा करो। सीता माता सती-धर्म की रक्षा करो !!

मोतीचन्द ने किसी प्रकार करुणा को न छोड़ा। वे दोनों हाथ पकड़ कर करुणा को पलंग की ओर खींचने लगे ! अब रक्षा का कोई उपाय नहीं है, करुणा ने यह सोच कर कहा—मेरे साथ ज़बरदस्ती न करो, ऐसा करके तुम सुखी न होओगे, एक बार मुझे छोड़ दो—क्षण-भर के लिए मुझे छोड़ दो।

मोतीचन्द—मैं ज़बरदस्ती न करूँगा, ज़बरदस्ती करना भी

नहीं चाहता, मैं तुमको मना लेना चाहता हूँ, मैं तुमको छोड़ सकता हूँ, परन्तु मेरी प्रार्थना तुम स्वीकार करो।

परन्तु तुम मुझे क्षण-भर के लिए छोड़ दो! मुझ पर कृपा करो! एक क्षण के लिए, केवल एक क्षण के लिए! करुणा ने कहा।

मोतीचन्द ने छोड़ कर कहा—तुम मुझे कष्ट न दो। तुम जो कुछ कहो, मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु मेरी एक ही प्रार्थना है! मैं तुमको चाहता हूँ, तुम्हारा प्रेम चाहता हूँ, मेरा समस्त ऐश्वर्य लेकर तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करो!

मोतीचन्द के हाथों से छूट कर करुणा अलग खड़ी हो गयी और क्रोध के साथ चिल्ला उठी—नीच, कामी, दूसरे की स्त्री का धर्म नष्ट करने वाला! पापी! हत्यारा!

'तुम्हारे इस रूप, सौन्दर्य और यौवन का आज मैं भोग करूँगा,' कहते हुए मोतीचन्द करुणा की ओर जैसे ही आगे बढ़े, करुणा काँप उठी, उसे तुरन्त स्मरण आया। उसने तेज़ी के साथ अपनी जेब में हाथ डाला और एक तेज़ चाकू निकाल कर मोतीचन्द के पेट में भोंक दिया। चाकू लगते ही मोतीचन्द चिल्लाकर गिर पड़े। करुणा कमरे से निकल कर बाहर गयी और तेज़ी के साथ मकान से निकल कर मेस्टन रोड की ओर बढ़ी। बात-की-बात में करुणा पटकापुर के निकट पहुँच गयी और थोड़ी ही देर में अपने मकान का ताला खोल कर भीतर चली गयी। उसने बाहर का दरवाज़ा बंद कर लिया और भीतर जाकर बैठ गयी। उसकी साँस ज़ोर से चल रही थी, उसका हृदय बराबर धड़क रहा था। उसकी आँखों में मोतीचन्द के मकान का दृश्य घूम रहा था।

दोपहर बीत चुकी थी, परन्तु शाम होने में अभी बहुत देर थी। करुणा अनेक प्रकार की बातें सोच-सोच कर समय काटने लगी। धीरे-धीरे दिन समाप्त हुआ, सूर्यास्त हो चुका था, अँधेरा होने में अधिक विलम्ब न थी। उसी समय लोकनाथ ने दरवाज़े पर आवाज़ दी। करुणा ने उठकर दर्वाज़ा खोला। लोकनाथ हाँफता हुआ भीतर गया और भय तथा उत्सुकता के साथ करुणा की ओर देखने लगा। करुणा ने भी लोकनाथ को देखा, वह कुछ कहने ही को थी कि लोकनाथ ने कहा—मैं मोतीचन्द के दरवाज़े से आ रहा हूँ, उनके एक बुड्ढे नौकर ने हमको बाहर से ही चुपके भाग जाने का संकेत किया था। मैं इसको कुछ समझ न सका। बुड्ढे ने तुरन्त मेरे कान में आकर कहा, तुम यहाँ से भाग जाओ। उसकी बात सुनकर मैं घबराता हुआ, तेज़ी के साथ आ रहा रहा हूँ।

लोकनाथ ने अपनी बात जैसे ही समाप्त की वैसे ही किसी ने दरवाज़े पर आवाज़ दी। लोकनाथ ने बढ़ कर दरवाज़ा खोलना चाहा किन्तु करुणा ने उसको रोकते हुए कहा—दरवाज़ा खोलने के पहले यह जान लो कि वह कौन है और क्यों दरवाज़ा खुलवाना चाहता है।

लोकनाथ ने किवाड़ों के पास जाकर पूछा—कौन है ?

'दरवाज़ा खोलो, कुछ बात कहनी है' कह कर वह आदमी चुप हो गया और किवाड़ खुलने का रास्ता देखने लगा।

'अच्छा, मैं पहचान गया वही बुड्ढा है और कोई नहीं' कह कर लोकनाथ आगे बढ़ा और उसने दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़ा खुलते ही एक वृद्ध पुरुष भीतर गया और करुणा की ओर देख कर कहा—बेटी, तुम देवी हो, मनुष्य नहीं, यह कह कर

उसने लोकनाथ की ओर देखा और घबराहट के साथ कहा, आपको मैंने भेज दिया यह अच्छा किया। मोती बाबू के पास जब लोग पहुँचे हैं तो उन्होंने चाकू मारने का दोष आपके ऊपर लगाया है, चाकू का ज़ख़्म बहुत अधिक तो नहीं है, लेकिन वह कम भी नहीं है। मोती बाबू कमरे में लिटाए गये हैं और उन के पास कितने ही आदमी बैठे हैं। डाक्टर बुलाया गया था, उसने आकर मरहम पट्टी की है। अपनी बात समाप्त करके बुड्ढे ने बाहर की ओर देखा और कहा—मैं अब जाता हूँ, वहाँ से छिपकर आया हूँ। मोती बाबू लोगों से आपका नाम लेकर यह कह रहे थे कि उसने हमको चाकू मारा है और हमारी जेब में कुछ नोट पड़े थे, उनको निकाल कर भाग गया है, मैं समझता हूँ कि यदि उन्होंने पुलिस को इस बात की रिपोर्ट कर दी तो आप गिरफ़्तार हो जायँगे। आपको दोषी ठहराने का कारण यह है कि यदि वे आपकी स्त्री को कहते तो यह बात लोगों से छिपी न रहती कि मामला क्या है।

कुछ देर में बुड्ढा चला गया। लोकनाथ ने किवाड़े बन्द कर लिए और करुणा के पास बैठ कर बातें करने लगा। करुणा ने सारी घटना कह कर सुना दी। उस समय करुणा की आँखों में दया न थी, आग की चिनगारियाँ बरस रही थीं। उसके हृदय में विषाद न था, विद्युत् शक्ति का संचार हो रहा था, अपनी बात समाप्त करके करुणा चुप हो रही। उसके नेत्रों से अब भी क्रोध और आवेश की लपटें निकल रही थीं।

लोकनाथ ने एक दीर्घ निश्वास ली और करुणा की बात सुन कर कहा—हमारे साथ बड़ा छल किया गया है। हमें इस छल का पता न था। जब शिवदयाल हमको मोतीचन्द के मकान से ले गये

हैं, उस समय वे हमको थोड़ी देर के लिए कहकर ले गये थे परन्तु अधिक देर होने पर जब-जब हमने वहाँ से चलने के लिए कहा, तब-तब उन्होंने ऐसी बातें पैदा कीं कि हम आ न सके। लाख प्रयत्न करने पर भी आते-आते हमको शाम हो गयी। जब हम गये थे, उस समय घर में आयी हुई कितनी ही स्त्रियाँ थीं। हमसे शिवदयाल ने यह भी कहा था कि ये सभी स्त्रियाँ आज यहीं पर रहेंगी।

करुणा फिर कुछ कहने लगी। बातें करते-करते उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। हृदय के आवेग को दबाकर उसने कहा—मैंने तुमसे बहुत पहले कहा था परन्तु तुमने मेरी बात का ख़याल न किया। शिवदयाल को तो मैं आरम्भ से ही जानती थी परंतु तुम तो उस पर बहुत विश्वास करते थे, तुम उसकी बातों में ऐसे फँसे कि तुमने मेरी बातों का भी विश्वास न किया।

विषाद और अनुशोचना के साथ लोकनाथ इन बातों को सुन रहा था, उसका हृदय करुणा की एक-एक बात सुनकर फटा जा रहा था। करुणा ने फिर कहा—मैं आज वहाँ जाने के लिए तैयार न थी, मैंने बराबर इन्कार किया था। मेरे हृदय में न जाने क्यों बार-बार आशंका उठती थी, परन्तु तुम, तुम क्यों मानने लगे। तुम्हारे आग्रह के सामने मेरी एक न चली।

बड़ी देर तक लोकनाथ करुणा के साथ बातें करता रहा और उसके बाद कुछ निश्चय करके उसने कानपुर तुरन्त छोड़ देने का विचार किया। उसी रात करुणा को लेकर लोकनाथ इलाहाबाद चला गया।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

प्रयाग पहुँच कर लोकनाथ ने कीटगंज में एक छोटा-सा मकान किराए पर ले लिया। इस मकान में रहते हुए करुणा को कई दिन बीत गये। इन दिनों में यद्यपि उसके लिए कोई सुभीता न हो गया था, जो कठिनाइयाँ थीं, वे ज्यों की त्यों बनी थीं; फिर करुणा को कानपुर छोड़ कर और प्रयाग पहुँच कर बड़ी शान्ति मिली।

एक दिन करुणा अपने मकान में बैठी थी, दिन के चार बज चुके थे। दोपहर को खा-पीकर लोकनाथ अपने लिए किसी काम की खोज में कहीं गया हुआ था। करुणा बैठी हुई उसी का रास्ता देख रही थी। उसका मन प्रसन्न था, वह रह-रह कर कुछ सोचती थी और मन-ही-मन ऐसा अनुभव करती थी जैसे कोई कुछ अच्छा समाचार सुनाने वाला हो। वह ऐसा क्यों सोच रही थी, इसका कारण वह स्वयं कुछ न जानती थी।

बैठे-बैठे बड़ी देर हो गई। करुणा सोचने लगी, क्या हमारे दिन ऐसे ही बने रहेंगे—क्या ईश्वर ने हमारे जीवन में सुख और सौभाग्य लिखा ही नहीं है ? इसी प्रकार वह अनेक बातें सोचने लगी। थोड़ी ही देर में उसके मनोभावों में परिवर्त्तन हुआ। बड़ी गंभीरता के साथ वह मन-ही-मन कह उठी, सभी बातों का अंत होता है, मेरे दुखों का भी कभी-न-कभी अंत ही होगा। और वे दिन भी आवेंगे जब हम लोग भी सुखी होंगे।

उसी समय लोकनाथ आ गया। करुणा उसकी ओर देखने लगी, मानो उसके मुँह से कुछ सुनना चाहती है। कुछ ठहर

कर लोकनाथ, जहाँ जहाँ गया था और जो कुछ परिणाम हुआ था, बता गया; लोकनाथ के चुप हो जाने पर करुणा एक दीर्घ निःश्वास लेकर रह गयी। वह कुछ बोलना चाहती थी पर बोल न सकी, कुछ पूछना चाहती थी किन्तु पूछने का उसमें साहस न हुआ। इसी समय लोकनाथ ने कहा—एक आदमी ने हमें बताया है कि यहाँ पर एक रानी साहिबा रहती हैं, उनको एक शिक्षक महाशय की आवश्यकता है। शिक्षक को उन्हीं के साथ रहना होगा और वे शिक्षक ऐसा चाहती हैं जिसकी अवस्था पचास वर्ष से अधिक हो, धर्म-शास्त्रों का उसको अच्छा ज्ञान हो हिन्दी का अच्छा पंडित हो, अंग्रेजी भी जानता हो।

लोकनाथ चुप हो गया। करुणा ने कुछ हँस कर कहा—काम भी दिखाई पड़ा तो इन शर्तों के साथ। भला इससे तुम्हारा क्या लाभ।

लोकनाथ ने भी मुस्कुरा दिया और कहा—जब से मैंने सुना है, मैं सोच रहा हूँ कि मैं पचास वर्ष का क्यों न हुआ!

करुणा—पचास वर्ष के तुम न बनो, यही अच्छा है।

लेकनाथ ने हँसते हुए कहा—क्यों?

करुणा ने सिर झुका लिया और मुस्कराने लगी।

कुछ देर तक बातें होती रहीं, दिन समाप्त हो गया। दूसरे दिन सबेरा होते ही, करुणा ने लोकनाथ से पूछा—कल तुम जिन रानी साहिबा की बात कह रहे थे, उनका पता मालूम है?

'हाँ मालूम क्यों नहीं' लोकनाथ ने कहा—मुट्ठीगंज या उसके पास ही कहीं, त्रिवेणी राजभवन है, उसी में वे रहती हैं। करुणा लोकनाथ को लेकर घर से निकली और रानी साहिबा के राजभवन की ओर बढ़ी। रास्ते में कितने ही इक्केवालों,

टाँगे वालों ने पूछा, सरकार इक्का, हुजूर टाँगा। करुणा कुछ उत्तर न देती। लोकनाथ इन्कार कर देता। पूछते-पूछते लोकनाथ रानी साहिबा के भवन पर पहुँच गया। भवन के पहले ही एक बड़ा और ऊँचा फाटक था। उस फाटक पर सिपाही सशस्त्र पहरा दे रहा था। लोकनाथ सिपाही से बातें करके आगे बढ़ा। भीतर जाने पर कितने ही आदमी मिले, जिन्होंने पूछा, कहाँ जाते हो, किससे मिलना है? उनके प्रश्नों के उत्तर देकर लोकनाथ करुणा के साथ फिर आगे बढ़ा। आगे जाकर फिर एक जगह जमादार ने पूछा—किसके पास जाओगे?

लोकनाथ—रानी साहिबा से मिलना है।

जमादार—क्या काम है?

लोकनाथ—आप रानी साहिबा के पास यह संदेश भेज दीजिए कि कोई आपसे मिलना चाहता है।

जमादार—इस प्रकार कोई मिल नहीं सकता।

लोकनाथ—फिर कैसे मिल सकता है?

जमादार—कोई काम होने पर।

'हाँ, काम ही है, रानी साहिबा का एक नोटिस अखबार में निकला है, उनको शिक्षक की आवश्यकता है, उसके लिए मिलना है' लोकनाथ ने कुछ विनम्र होकर कहा।

'रानी साहिबा से मैं मिलूँगी' कह कर स्वाभिमान के साथ करुणा ने जमादार की ओर देखा।

जमादार ने करुणा को नीचे से ऊपर तक देखा, और फिर रानी साहिबा के पास जाकर पूछा—हुजूर, एक युवती आपसे मिलने के लिये आयी है, क्या हुकुम है?

'आने दो' कह कर रानी ने जमादार को आज्ञा दी।

जमादार लौट गया, उसने लोकनाथ को रोक लिया और करुणा को भीतर लिवाकर गया। रानी साहिबा जिस कमरे में थीं, वह कमरा सोने से सजा हुआ था। रानी साहिबा एक सुन्दर पलँग पर लेटी थीं, करुणा ने पास जाकर उनके चरणों पर सिर झुकाया; रानी उठकर बैठकर गयीं और करुणा की पीठ पर हाथ रख कर उन्होंने आशीर्वाद दिया। पास ही कुर्सी पर बैठकर करुणा ने कहा—समाचार पत्र में आपका एक विज्ञापन निकला है, उसी विज्ञापन के सम्बन्ध में मैं आपके पास आयी हूं।

'हाँ, निकाला था' कहकर रानी ने पूछा—तुम बेटी किसके लिये चाहती हो?

करुणा—पहले मैं यह जानना चाहती हूँ कि शिक्षक से क्या काम आप लेंगी।

रानी—पढ़ाने का, मैं अभागिनी हूँ, मेरी बहू विधवा है, उसी को पढ़ाने के लिये एक वृद्ध शिक्षक की आवश्यकता है। यों तो पढ़ाने वाले बहुत मिलते हैं, परन्तु मैं किसी वृद्ध धार्मिक आदमी को ही चाहती हूँ।

'और यदि स्त्री शिक्षक हो तो'? करुणा ने अत्यन्त विनम्र भाव से पूछा।

रानी—बेटी, इस प्रकार पढ़ी-लिखी स्त्री कहाँ मिलेगी। यदि कोई मिलेगी भी तो एक आध घंटे के लिये। परन्तु मैं तो उसका पूरा समय चाहती हूँ। यदि इस प्रकार कोई स्त्री मिल सके, तो फिर क्या कहना है।

करुणा—क्या मैं आपके यहाँ इस प्रकार की सेवा नहीं कर सकती?

'बेटी तुम' रानी ने व्यग्र होकर पूछा—तुम कहाँ तक पढ़ी हो?

करुणा—मैंने अँगरेजी में मैट्रिक पास किया है, मेरे पिता परम धार्मिक थे, उन्होंने लड़कपन में मुझे धर्मशास्त्र का ज्ञान कराया था। मुझे गीता, रामायण और धार्मिक ग्रंथ बहुत प्रिय हैं। मैंने इन धर्म-ग्रंथों का अध्ययन अपने पिता जी से किया था। मेरे दुर्भाग्य से वे मेरा साथ छोड़ कर चले गये, परन्तु उनका बताया हुआ धर्म-ज्ञान आज भी मेरे साथ है।

करुणा की इन बातों को सुन कर रानी का शरीर रोमाञ्च हो उठा, गद्‌गद कंठ से उन्होंने कहा—बेटी आज मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है। तू बेटी मुझे आज कहाँ से मिल गयी। तुझे देखते ही मेरा हृदय जाने क्यों बहुत प्रसन्न हो गया था, बिना जान-पहचान के जो बार-बार मेरे मुँह से बेटी-बेटी निकलने लगा उसका कारण है। मुझे ईश्वर ने एक बेटा और एक बेटी दी थी। बेटी आठ-दस वर्ष की होकर मर गयी थी। मेरी बेटी बड़ी सुन्दर थी, कितनी सुन्दर थी, किसी को बता नहीं सकती। वह कितनी अच्छी थी, किसी को समझा नहीं सकती। बस तेरे ही समान वह मेरी बेटी थी। तेरी ही तरह वह सुन्दरी थी। तेरा ही सा उसका मुँह था। इसलिए तेरे लिए मेरे मुँह से बार-बार बेटी निकल रहा है।

करुणा चुपचाप सुन रही थी। रानी ने फिर कहा—मैं बहुत बड़ी अभागिनी हूँ, एक बेटा था, परसाल आज ही कल नहीं रहा। मेरी बहू, फूल-सी बहू अनाथ हो गयी! विधवा हो गयी! वह पढ़ी-लिखी है, फिर भी मैं चाहती थी कि उसको धर्मशास्त्र का ज्ञान कराऊँ, इसीलिए मैंने समाचार पत्रों में शिक्षक के लिए छपवाया था। परंतु मुझे क्या पता था, कि मेरे इस शुभ काम के लिए, मुझे एक बेटी, बिलकुल मेरी ही सी बेटी, मुझे मिलेगी।

करुणा को रानी की बातों से बड़ी सान्त्वना मिली। वह बैठी हुई, बड़े स्नेह से रानी की ओर देख रही थी, रानी ने बुलाया—सावित्री, ओ सावित्री, अरे यहाँ आ, देख तो।

रानी की बहू सावित्री ने कमरे में प्रवेश किया। करुणा ने खड़े होकर सावित्री को प्रणाम किया। रानी ने कहा—सावित्री, देख तेरे लिए मैं तेरी ही तरह की एक बेटी ले आयी हूँ। तुझे इसी के साथ रहना होगा।

रानी की बात सुन कर सावित्री ने मुस्करा दिया, करुणा ने सावित्री की ओर देखा और सावित्री ने करुणा की ओर। दोनों कुछ देर तक बातें करती रहीं।

रानी ने पूछा—बेटी तुम यहाँ कहाँ रहती हो ?

करुणा—कीटगंज में।

रानी—तुम्हारे और कौन है ?

करुणा ने सिर झुकाकर धीरे से कहा—मेरे पति।

'वे कहाँ हैं' रानी ने तेजी के साथ प्रसन्न होकर पूछा।

'मेरे साथ आए हैं, बाहर बैठे हैं' करुणा ने उत्तर दिया।

'ओ हो' कह कर रानी ने नौकर को बुलाया, और उससे कहा, देखो बेटी के साथ जो बाबू आए हैं, उनको मर्दाने मकान में लिवा ले जाओ और उचित आदर-सत्कार करो।

इसके बाद रानी करुणा से कुछ देर तक बातें करती रहीं। उसी दिन से करुणा का वहीं पर रहना ठीक हो गया। वह सावित्री के साथ ही रहेगी उसको पढ़ायेगी, धर्म-शास्त्रों की शिक्षा देगी। उसी के साथ खेलेगी और साथ ही उसी राज-भवन में रहेगी। रानी ने उस भवन में एक सुन्दर हिस्सा करुणा के रहने

के लिए दे दिया और उसके निर्वाह के लिए सौ रुपये मासिक की व्यवस्था कर दी।

करुणा वहीं पर रहने लगी। उसकी मिलनसार प्रकृति ने रानी पर बड़ा प्रभाव डाला। रानी ने जितनी आशा की थी, करुणा उससे कहीं अधिक योग्य और काम की प्रमाणित हुई। सावित्री के साथ तो थोड़े ही दिनों में वह इतनी हिल-मिल गयी मानो वे दोनों एक ही घर की लड़कियाँ हैं। करुणा के साथ सावित्री का इतना अधिक स्नेह हो गया कि वह उसको छोड़ कर कभी एक मिनट के लिए भी अलग न होती। करुणा और सावित्री जब बैठ कर बातें करतीं तो रानी को अत्यधिक सुख मिलता। करुणा की बातों में बड़ा मनोरंजन होता था। सावित्री को हँसना बहुत प्रिय था। एक दिन दोनों को अत्यंत प्रसन्न देखकर रानी ने निकट जाकर कहा—करुणा तेरे आजाने से हमको इतनी प्रसन्नता होगी, हमें इसका पता न था। बेटा खो कर बेटे के रूप में मैं सावित्री को देखा करती थी, तुझे पाकर, तुझमें मैं अपनी प्यारी बेटी का दर्शन करती हूँ।

करुणा, रानी साहिबा को अब रानी नहीं कहती। वह उनको माँ कह कर पुकारती है। रानी की बात सुन कर करुणा ने कहा—मैंने अपनी माँ का सुख नहीं देखा, मैं माता के लिए दुखिया थी, लड़की के हृदय में पिता से भी अधिक माता का स्थान होता है, ईश्वर ने मेरे आँसू पोंछे। मेरे जीवन की इस क्षति की पूर्त्ति हुई। मुझे माता मिल गयी!

करुणा की ये बातें सुन कर रानी हँस पड़तीं और करुणा जब इस प्रकार की बातें करती, तो सावित्री उसकी ओर देखकर रह जाती।

बीसवाँ परिच्छेद

कल संक्रान्ति है, प्रयाग में कल के दिन त्रिवेणी-स्नान का मेला बड़ी धूम से होता है। गंगा पर भक्ति रखनेवाले, अपने धार्मिक पर्वों का मान रखनेवाले सहस्त्रों, लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष कल के दिन दूर-दूर से यहाँ आते हैं और त्रिवेणी का स्नान करके पुण्य-लाभ करते हैं।

आज दो-तीन दिनों से बहुत जाड़ा पड़ रहा है। इधर-उधर लोग बातें करते हैं कि कल की रात बहुत पाला पड़ा है। इस भयानक शीत में भी कल संक्रान्ति-स्नान करने के लिये, चारों ओर से यात्री आ रहे हैं। स्नान कल है, परन्तु आज दोपहर से ही आए हुए बाहरी यात्रियों से इतनी भीड़ हो रही है कि सड़कों पर चलने के लिये स्थान नहीं मिलता। दारागंज से लेकर त्रिवेणी की आस-पास सड़कों पर यात्री ही यात्री दिखाई दे रहे हैं।

जिनको ईश्वर ने पैसा दिया है, वे स्त्री-पुरुष रेलगाड़ी पर, मोटर पर अथवा अन्य किसी पैसेवाली सवारी पर बाहर से प्रयाग आये हैं। जिनके पास पैसा नहीं है; वे अपनी सुविधाओं के अनुसार बैलगाड़ियों पर, स्त्रियों, बच्चों को बिठाकर, संक्रान्ति नहाने लिवा लाये हैं। जिन्हें ईश्वर ने ये सुविधाएँ भी नहीं दीं, वे अपने बाल-बच्चों के साथ अनेक मीलों और कोसों का मार्ग पार करते हुए पैदल ही त्रिवेणी-स्नान करने के लिए दौड़ पड़े हैं। इस प्रकार आये हुये यात्रियों से प्रयाग की सड़कों पर भीषण कोलाहल हो रहा है।

संध्याकाल, अँधेरी सड़कों के किनारों पर स्त्री-बच्चों के साथ

पड़े हुए यात्री भेड़ों और बकरियों के रूप में दिखाई देते हैं। प्रकाश नहीं है। उनको प्रकाश की जरूरत भी नहीं है। कपड़े नहीं हैं। फटे पुराने उनके कपड़ों में शीतल वायु प्रवेश करके उनके शरीरों को भयानक शीत पहुँचा रही है। इस शीत से सुरक्षित रहने के लिए इन यात्रियों ने, सड़क के किनारे पड़ी हुई खाली जगहों से सूखे गोबर और लकड़ियों को बिनकर आग जला रखी है। जिनके पास पैसे हैं, वे लकड़ी के टाल पर से लकड़ियाँ मोल ले आये हैं और आग जलाकर उन लोगों ने शीत से बचने का प्रयत्न कर रखा है।

आज इन सड़कों का दृश्य बड़ा ही मनोहर हो गया है। जलाई हुई आग में, किसी ने आटे की मोटी-मोटी रोटियाँ बनायी हैं, किसी ने मोटी-मोटी बाटियाँ बनाकर तैयार की हैं, बन जाने पर नमक के बड़े-बड़े टुकड़ों के साथ खाते हुए वे जिस प्रकार प्रसन्न और प्रफुल्लित हो रहे हैं, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

खा-पीकर स्त्रियों ने गाना आरम्भ किया। सड़कों पर, मीलों की लम्बाई में, जिन मधुर स्वरों में संगीत के लय सुनाई दे रहे हैं, वे बहुत ही जीवन-प्रद हैं। उन स्वरों में जीवन का बहुत सुन्दर आदर्श है। एक ओर शीत की भीषणता! दूसरी ओर उसके प्रति उपेक्षा, भयानक उपेक्षा! अद्भुत दृश्य है! जो पक्के मकानों में बन्द हैं, जो ऊनी और गर्म कपड़ों के बोझ अपने ऊपर लादे, सुन्दर बन्द कमरों में लेटे हुए हैं, वे इस शीत के प्रलय से चित्कार कर रहे हैं; परंतु देश के ये दीन-दुर्बल, सूखी हड्डियों को लिए हुए वृद्ध, कोमलांग स्त्रियाँ और दुधमुँहे बालक सड़कों के सम स्थानों में इस प्रलयकारी शीत में पड़े हुए मधुर सङ्गीत का स्वर निकाल रहे हैं। सचमुच ही जीवन का अद्भुत दृश्य है!!

धीरे-धीरे आधी रात समाप्त होगयी, एक बजा, दो बजे! त्रिवेणी-स्नान की तैयारियाँ होने लगीं। स्त्री-पुरुषों के झुंड के झुंड चलते हुए दिखाई देने लगे। तीन और चार बजे के लगभग, त्रिवेणी को ओर जानेवाली सभी सड़कें भर गयीं। साइकलों, इक्कों और मोटरों को निकलने के लिए कहीं स्थान न रहे। बड़ी कठिनाई के साथ, स्नानार्थी सड़कों का मार्ग पार करते और सड़कों को छोड़कर जब वे गंगा जी के बालुकारण्य में पदार्पण करते, उस समय उनके कानों में एक भयानक कोलाहल सुनाई पड़ता। यहाँ पर मार्ग के दोनों ओर, भाँति-भाँति की दूकानें लगी हुई हैं। तरह तरह के खेलों, तमाशों को दिखानेवाले अपने डेरे-खीमे लगाये हुए हैं। जहाँ मिठाई वालों की दूकानें हैं, वहाँ वही दिखाई दे रही हैं। इस प्रकार मार्ग के दोनों ओर विभिन्न प्रकार की दूकानें सजी हुई हैं। यह व्यापार है, उनके साथ व्यापार है जो धर्म के नाम पर बलिदान होने को आये हैं! जो अपने धार्मिक पर्वों के माहात्म्य की रक्षा करने के लिए अपने दुर्बल प्राणों की भेंट चढ़ाने के लिए आये हैं! उनके साथ ये व्यापार है!

कुछ दूर और आगे चलने पर भीख माँगने वालों की दोनों ओर पंक्तियाँ हैं। इन भिक्षार्थियों में कुछ पुरुष हैं। कुछ स्त्रियाँ हैं और कुछ बच्चे हैं। इनके दृश्य बहुत भयानक हैं। इकहरे बोरों के चलनीदार फटे-पुराने टुकड़े लपेट कर ये लोग कुछ अनाज के दानों की आशा में बैठे हैं! स्त्रियाँ काँप रही हैं, बच्चे प्रखर वायु में पत्तों की भाँति इधर से उधर हिल रहे हैं!

इसके बाद साधुओं के जमघट हैं। स्थूलकाय जटाधारी, संसार से विरक्ति उत्पन्न करनेवाले इन साधुओं के आगे आग जल रही है और उसमें मोटी-मोटी लकड़ियाँ लगी हैं जिनसे ऊंची लपटें

उड़ रही हैं। चार-चार छः-छः साधुओं ने टोलियाँ बना कर हर-हर महादेव बजरङ्गी की आवाजें लगा रखीं हैं।

इस प्रकार अनेक दृश्य और रहस्यों को पार करके आगे जाने पर त्रिवेणी का किनारा मिलता। किनारे पर, बहुत दूर तक स्त्री-पुरुषों की भयानक भीड़ स्नान करने में लगी हुई है। यहाँ का दृश्य कुछ और ही है। जो नहा चुके हैं, वे काँपते हुए शरीर से कपड़े बदल रहे हैं, जिन्होंने स्नान नहीं किया वे स्नान करने के लिए कपड़े उतार रहे हैं। बहुत दूर तक यही दृश्य दिखाई दे रहा था। इस दृश्य में भक्ति, विरक्ति, विनोद, आमोद, संकोच, संयोग, लज्जा और निर्लज्जा आदि अनेक दृश्यों का सम्मिश्रण हो रहा था! तुलसीदास के शब्दों के अनुसार—

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

इस प्रकार त्रिवेणी का स्नान करके लौटने पर जहाँ भिखारी लोग बैठे थे, अचानक, किसी के लड़ने-झगड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। एक वृद्ध गीली बालू पर एक मैला पुराना, छोटा-सा कपड़ा बिछाये बैठा है। उसके पास दो लड़कियाँ बैठी हैं, इन लड़कियों में एक की अवस्था छः-सात वर्ष और दूसरे की नौ-दस वर्ष होगी। लड़कियों के पास बैठा हुआ वृद्ध पुरुष लड़कियों का बाप मालूम होता है। उससे कुछ दूरी पर पाँच-छः साधुओं की एक टोली बैठी हुई आग ताप रही है। साधुओं की उस टोली से वृद्ध का अन्तर तीन-चार गज से कम नहीं है। उस टोली का एक साधू उस वृद्ध से कह रहा है, तुम यहाँ से उठ जाओ।

साधू की इस बात को सुनकर वृद्ध ने कहा—महाराज मैं क्यों उठ जाऊँ। जैसे सब कोई बैठे हैं, वैसे ही मैं भी बैठा हूँ। गङ्गा-मैया सभी की देंगी!

"नहीं, नहीं तुम यहाँ से उठ जाओ, तुमको यहाँ से उठ जाना होगा" तड़पकर उस साधु ने वृद्ध से कहा।

वृद्ध ने साधु की ओर देखा, उसने उसका कहना सुना परन्तु बिना कुछ उत्तर दिये आगे निकलने वाले स्त्री-पुरुषों से कहने लगा—बाबू जी कुछ मिल जाय, बाबू जी कुछ मिल जाय! परन्तु वहाँ कौन किसकी सुनता था। वृद्ध ने अपने आगे एक फटा-पुराना कपड़ा फैला रखा था, उसी में कुछ दाने गेहूँ और कुछ दाने चावलों के पड़े हुए थे, एक साधु ने फिर कहा—क्यों बुड्ढे, यहाँ से जाता नहीं है?

"महाराज, मैं कहाँ जाऊँ, गङ्गा जी की सरन में आगया हूँ, सो मैं भी माँग रहा हूँ" कहकर वृद्ध ने फिर माँगना आरम्भ किया—बाबू जी कुछ मिल जाय; बाबू जी कुछ मिल जाय।

'नहीं, तुमको उठ जाना होगा' जोर के साथ साधु ने डाँटकर कहा।

वृद्ध—हमको क्यों उठ जाना होगा, क्या हम यहाँ बैठ नहीं सकते?

साधु—हाँ, तुम यहाँ बैठ नहीं सकते। देखते नहीं हो, साधुओं की धूनी लगी है। तुम हमारी धूनी से दूर जाकर बैठो, यहाँ से उठ जाओ।

वृद्ध—हम तुम्हारी धूनी का क्या बिगाड़ते हैं, ब्राह्मण आदमी हैं, अपना बैठकर माँगते हैं, तुम्हारा इसमें क्या नुकसान है।

'नहीं, तुमको यहाँ से उठ जाना होगा' साधु ने क्रोध में कहा—'तुमको कई बार बोला, परन्तु तुम यहाँ से उठता नहीं है' कह कर साधु चुप हो गया।

दूसरे साधु ने कहा—देखो तुमको एक बार बोल दिया, राम-

आसरे। तुमको साधुओं को क्रोध नहीं दिलाना चाहिये रामआसरे।

वृद्ध ने कहा—तो हम न माँगें क्या, अरे भाई तुम माँगते हो, हम भी माँगते हैं फिर हमको क्यों रोकते हो।

उसी समय एक साधु अधजली एक लकड़ी लेकर खड़ा होगया और बोला, तुम यहाँ से हटेगा कि नहीं? तुमको बार-बार बोल दिया कि साधु को गुस्सा मत दिलाओ तुम कहना नहीं मानता।

एक सिपाही घूमता हुआ उधर आ निकला। उसने यह देखकर साधु से पूछा—क्यों बाबा जी, क्या बात है?

साधु ने तेजी के साथ कहा—कुछ नहीं, इस बुड्ढे को हम लोग बड़ी देर से रोकते हैं कि यहाँ से उठकर दूर जाकर बैठो परन्तु यह बुड्ढा यहाँ से उठता नहीं है।

सिपाही ने बुड्ढे की ओर देखा और उससे कहा—क्यों बे पाजी, तू क्यों साधु-महात्माओं से लड़ाई करता है?

वृद्ध ने हाथ जोड़कर काँपते हुए कहा—नहीं हुजूर, मैं लड़ाई नहीं करता, ये लोग कहते हैं, यहाँ से उठ जाओ, इनका भला मैं क्या नुक़सान करता हूँ। अरे गङ्गा मैया की सरन में मैं आगया हूँ और ये भी आगये हैं, जिसके भाग में जो बदा है, गङ्गा मैया उसको देवै करेंगी, फिर मुझ गरीब ब्राह्मण को क्यों यहाँ से उठाते हो।

सिपाही ने इस लम्बी-चौड़ी बात को सुनकर उस वृद्ध को डाँटा और कहा—अबे कहीं के कमीने, तू साधुओं से लड़ाई करता है!

वृद्ध को अपने अपमान से क्रोध आगया। उसने कुछ उत्ते-

जित होकर कहा—क्या कहा कमीना! मैं कमीना हूँ! मैं कमीना नहीं हूँ, ब्राह्मण हूँ, कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ, परमात्मा ने गरीब कर दिया है इसीलिए चार भागवानों से माँग खाता हूँ, लेकिन मैं कमीना नहीं हूँ।

सिपाही ने क्रोध से चिल्लाकर कहा—अबे चुप, कहीं के पाजी, ज़बान लड़ाता है। साधुओं से लड़ाई करता है और ऊपर के बातें बनाता है। ज्यादा बक-बक करेगा तो अभी हवालात में बन्द कर दूँगा।

उस वृद्ध की हक्की-बक्की भूल गयी। वह चुप होगया। उसको चुप देखकर सिपाही ने अपना रास्ता लिया। साधु ने फिर कहा—ओ बाबा, तुम यहाँ से उठ जाओ।

वृद्ध ने धीरे से कहा—महाराज, मैं तो नहीं उठूँगा। क्या गङ्गा जी तुम्हारी ही हैं, हमारी नहीं हैं?

उसकी बात सुनते ही एक साधु उठा और पास ही रखे हुये मिट्टी के घड़े से एक बड़े लोटे में पानी भरकर, वृद्ध की ओर चला और वृद्ध की दोनों लड़कियों पर छोड़ दिया। उस बर्फ़ के समान शीतल पानी के पड़ते ही दोनों लड़कियाँ चिल्ला उठीं और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं। वृद्ध ने चिल्लाकर सिपाही से कहा—देखिये हुज़ूर हमारी लड़कियों पर ठंढा पानी छोड़ दिया।

सिपाही लौटकर फिर आगया और कहने लगा—तुमको हम बोला था, यहाँ से उठ जाओ, साधु लोग से झगड़ा मत करो, तुमने नहीं माना, उसका नतीजा तुमको मिला, और तुमको अभी और......।

इसी समय एक साधु अपने चिमटे से आग का एक बड़ा

अङ्गारा लेकर उस वृद्ध की ओर बढ़ा और बोला, हम तुमको जला देंगे, नहीं तो तुम यहाँ से उठ जाओ।

सैकड़ों-हजारों आदमियों की यातायात में कौन किसका दुख देखता है, परन्तु जहाँ पर यह सब होरहा था, वहीं पर दो युवती स्त्रियाँ खड़ी हुई यह दृश्य देख रही थीं, वे दोनों आगे बढ़ीं और सिपाही के निकट जाकर उनमें से एक ने कहा—क्यों क्या बात है, तुम इस गरीब आदमी को क्यों सता रहे हो?

सिपाही ने घूमकर उन दोनों युवतियों की ओर देखा, सिपाही की कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। उसने उनको देखा और चुप हो गया। उन दोनों युवतियों ने साधु की ओर देखा, साधु चुपके जाकर अपनी धूनी पर बैठ गया। उन युवतियों के पीछे एक तगड़ा आदमी बन्दूक़ लिए खड़ा था। एक युवती ने अपने उस आदमी से कहा—जमादार, देखो तुम इन दोनों लड़कियों को एक-एक रुपया दे दो।

जमादार ने तुरन्त आज्ञा-पालन किया। उसके बाद, चलतेहुए उस युवती ने सिपाही से कहा—देखो, अब इनको कोई बात न कहना, अच्छा। कहकर वे दोनों युवतियाँ आगे बढ़ीं। वह बल-वान पुरुष उनके पीछे-पीछे चल रहा था। कुछ आगे चलकर दूसरी युवती ने पूछा—करुणा, क्या तुम इस भिखारी को जानती हो?

करुणा—हाँ, मैं जानती हूँ। जब कीटगञ्ज में आकर रही थी उस समय यह बुड्ढा वहीं रहता था और खोञ्चा बेचा करता था, उसकी ये दोनों लड़कियाँ मेरे घर आया करती थीं। समय की बात, आज भीख माँग रही हैं।

करुणा चुप हो गयी। सावित्री चुपके उसके साथ चल रही थी। पुलिस का सिपाही करुणा के पीछे कुछ दूरी पर आरहा

था, उसकी समझ में न आया कि ये लोग कौन हैं। कुछ देर में भीड़ को करुणा और सावित्री ने पार किया और आगे जहाँ पर मोटर खड़ी थी, वहाँ जाकर, मोटर पर दोनों बैठ गयीं। जमादार ड्राइवर के पास बैठ गया, और मोटर भों-भों कर चलने लगी! पुलिस का सिपाही अब भी कुछ दूर पर खड़े उनको देख रहा था।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

रानी साहिबा के यहाँ करुणा को आये हुए जितने ही दिन अधिक होते जाते हैं, रानी के हृदय में उसका मान उतना ही बढ़ता जाता है। करुणा ने अपने व्यवहार-बर्त्ताव से रियासत के छोटे और बड़े सभी कर्मचारियों पर इतना प्रभाव डाला है कि वे सभी लोग उसकी रात-दिन प्रशंसा करते हैं।

लखनऊ के रास्ते में इलाहाबाद के उत्तर ओर रानी की रियासत है। जब कभी तबीयत होती है अथवा आवश्यकता होती है तो रानी साहिबा रियासत जाती हैं अन्यथा उनका अधिकांश रहना प्रयाग में ही होता है। वे करुणा के साथ तीन-चार बार अपनी रियासत जा चुकी हैं। करुणा को शहर से वहाँ विशेष अच्छा लगता है। उसने अपने लड़कपन में देहात कभी नहीं देखा था। इसीलिए जब वह पहले पहल रियासत गयी तो वहाँ की अनेक बातें उसे आश्चर्यजनक मालूम हुईं।

एक दिन अचानक रानी साहिबा रियासत जाने के लिये तैयार हुईं। इस बार करुणा और सावित्री को अपने साथ न ले जाना चाहती थीं परन्तु करुणा जाने के लिए तैयार थी। यह देखकर

सावित्री भी जाने का विचार करने लगी और अन्त में करुणा और सावित्री—दोनों ही रानी के साथ रियासत गयीं। अपनी रियासत में श्यामनगर रानी साहिबा के रहने का स्थान है। यहाँ पर उनके पूर्वजों का बनवाया हुआ एक बहुत बड़ा राजमहल है। श्यामनगर के आस-पास, बहुत दूर तक रियासत फैली हुई है। रियासत-भर में श्यामनगर सब से अच्छा स्थान है। नागरिक जीवन की उसमें बहुत-सी बातें पायी जाती हैं।

करुणा को दीन-दुखियों से बहुत स्नेह था। वह जब कभी रियासत में घूमने निकलती थी तो दीन-दरिद्रों के यहाँ जाने और उनसे बातें करने में उसको बहुत सुख मिलता था। रानी प्रायः उससे कहा करती थी—बेटी तू वहाँ जाकर क्या उन छोटे आदमियों से बातें किया करती है!

करुणा हँसते-हँसते कहती—माँ ये दीन-दरिद्र देखने-सुनने में छोटे होते हैं, परन्तु इनके हृदय बहुत विशाल होते हैं। जो लोग बड़े आदमी कहलाते हैं, वास्तव में वे बड़े नहीं होते।

रानी पूछतीं—तो क्या वे दुखी दरिद्र बड़े आदमी होते हैं?

'हाँ माँ' करुणा कहती—वे ही बड़े आदमी होते हैं, जिनके हृदय विशाल हैं—जिनके हृदयों में उदारता है वही वास्तव में बड़े आदमी हैं। जो ऐसे नहीं हैं, वे ही संसार के छोटे आदमी हैं। छोटों और बड़ों की इसके सिवा और कोई परिभाषा नहीं हो सकती।

करुणा की इन बातों को सुनकर रानी हँसने लगतीं। सावित्री करुणा की ओर देखकर रह जाती। रानी को हँसते देख कर करुणा कहती—हाँ माँ, यही बात है। जो निर्धन हैं—दीन-हीन और दरिद्र हैं, तुम माँ, एक बार उनके यहाँ चलो, फिर

देखो वे कितना आदर करते हैं। उस समय उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता, ऐसा जान पड़ता है, मानो संसार में आनन्द की जितनी मात्रा है उस सब का वे ही उपयोग कर डालते हैं। उस समय उनकी विचित्र दशा हो जाती है, उनके पास जो कुछ होता है, अपना सर्वस्व खिला-पिला देने की वे इच्छा करते हैं, परन्तु जिनको बड़े आदमी कहते हैं उनमें इस प्रकार की बातों का पूर्ण अभाव होता है।

करुणा की इन बातों को सुनकर रानी कहतीं—बेटी, तू ये बातें कहाँ से सीख आयी है ?

रानी की इस बात को सुनकर करुणा मुस्कराने लगती। वह कुछ उत्तर न देती। इस बार रियासत गये हुये करुणा को अनेक दिन बीत गये। एक दिन वह सावित्री से बैठी हुई बातें कर रही थी, उसी समय घर की एक नौकरानी ने आकर कहा—आज सितला की घरवाली बहुत मारी गयी है।

करुणा ने पूछा—किसने मारा है ?

उसने जवाब दिया—दीवान जी के हुकुम से एक नौकर ने मारा है, और कौन मारेगा।

करुणा—सितला की स्त्री ?

'हाँ सरकार, सितला की स्त्री, वही जो एक दिन आपके पास आयी थी और आप से कुछ देर तक बातें करती रही थी' नौकरानी ने कहा।

'हाँ-हाँ, मैं जानती हूँ, मुझे भूल नहीं गया' करुणा ने कहा—तो क्या बात है, क्यों मारी गयी है ?

नौकरानी—यह सब तो मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम, सितला की घरवाली रानीसाहिबा के पास आयी है।

नौकरानी की बात सुनकर करुणा रानी के कमरे में गयी, वहाँ शीतल की स्त्री बैठी हुई अपना रोना रो रही थी। करुणा बैठकर वहाँ सब बातें सुनने लगी। कुछ देर के बाद इस बात का पता चला कि शीतल अहीर पर कुछ रुपया बाक़ी था, उसी रुपये को वसूल करने के लिए शीतल के बैल और उसकी गाय भैंसे ले ली गयी हैं। यह भी मालूम हुआ कि इसी सम्बन्ध में कुछ अनुचित बात कहने से यह मारी गयी है।

रानी जब सब बातें सुन चुकीं तो वे कुछ सोचने लगीं। उनकी समझ में न आया कि अब उसके साथ क्या किया जा सकता है। रानी ने दीवान को बुलवाया और चाहा कि उनसे कुछ रियायत करने के लिये कह दिया जाय। दीवान जी के आजाने पर करुणा ने पूछा—दीवान जी, इसका क्या मामला है?

दीवान—यह सब रियासत के काम हैं। इनको आप कहाँ तक जानेंगी। इसके आदमी पर बहुत दिन से रुपया बाकी चला आता है। जब वह रुपया नहीं दे सका तो उसके जानवर ले लिये गये। उसपर इसने कई अनुचित बातें बकीं, इसीलिए यह मारी गयी है और मारे जाने का काम ही है।

दीवान जी की बात सुन कर शीतल की स्त्री बोल उठी—नहीं सरकार, मैंने कोई अनुचित बात नहीं कही थी। ऐसी बात भला मैं कही कैसे सकती हूँ। मैं तो सिर्फ इसीलिये रो रही थी कि जब सरकार ने हमारे बैल भी ले लिए तो हम लोग अब काहे से कमायेंगे। आपके रुपये ज़रूर थे लेकिन धीरे-धीरे कमाकर दे दिये जाते और हमेशा दिये ही गये हैं। रियासत में ऐसी जबर-दस्ती कभी हुई नहीं है। अब सरकार आप ही बतावें कि हमारे चार बाल-बच्चे हैं, वे कैसे जियेंगे।

करुणा ने दीवान जी से पूछा, इसकी अनुचित बातें आपने स्वयं सुनी हैं ?

दीवान जी—नहीं, मैंने नहीं सुनीं, मुझसे सिपाही ने कहा है।

'मुझे इस बात का सन्देह था, वही हुआ' कहकर करुणा ने दीवान जी की ओर देखा और कहा—ऐसे समय पर ये लोग यदि कुछ कहें-सुनें भी तो उसका ख्याल नहीं किया जाता। आपकी रियासत में ये लोग रहते हैं। आपका जो कुछ इनपर है उसको बिना दिये इनके प्राण कैसे बच सकते हैं। आपको लेना भी चाहिये परन्तु एक ढंग के साथ। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि इसके साथ कुछ ज्यादती हुई है। आप लोगों को जीवन दे सकते हैं और जीवन ले भी सकते हैं। जिसके द्वारा ये कमाते-खाते हैं, यदि इनसे वही छीन लिये जायेंगे तो उसके बाद भूखों मरने के सिवा ये और कर ही क्या सकते हैं। दूसरी बात यह·······।

दीवान जी ने कुछ मुस्कराते हुये कहा—हुजूर, आप इन लोगों की बातें नहीं जानतीं, ये लोग बड़े बदमाश होते हैं। आपसे आकर इन्होंने रो-रोकर बातें सुनादीं परन्तु हम जब जाते हैं तो अपने-अपने घरों पर ये लोग बड़ी अकड़बाजी दिखाते हैं। यही रुपया जो बाकी था, उसके लिये इसने क्या-क्या बातें की हैं। अब आपसे मैं क्या सुनाऊँ।

करुणा ने अत्यन्त विनीत होकर कहा—यह तो ठीक है। इनकी अकड़बाजी, इनके छल और इनकी अन्य खराबियों का कुछ कारण है; किस प्रकार बोलना चाहिये, किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए और किस प्रकार आपके पास आकर अपनी मुसीबत कहना चाहिए, ये लोग इन बातों का ज्ञान कहीं से

कुछ पाते भी नहीं, फिर इनसे किस प्रकार उन सभी बातों की आशा की जा सकती है, जो मनुष्य में पायी जानी चाहिएँ।

इसके सिवा, स्त्री को मारना-पीटना हमारे धर्म-शास्त्रों के विरुद्ध है और हमारे ही क्यों, संसार के सभी देशों में यह बात मानी जाती है, हमारे यहाँ तो इस बात को पाप का एक रूप दिया गया है।

'देवी जी, इन बातों से रियासत में काम नहीं चल सकता यहाँ तो इतनी सख्ती न की जाय तो फिर......।' दीवान जी ने कहा।

दीवान जी की इस बात को करुणा ने बीच में ही काट कर कहा—काम नहीं चल सकता, ऐसी बात नहीं। प्रजा के सुखी और सन्तुष्ट होने में ही राजा का कल्याण होता है। आपसे इनको जितनी सुविधायें मिलेंगी, उतने ही ये लोग योग्य, शिष्ट और रियासत के शुभचिन्तक बनेंगे।

कुछ देर तक करुणा इसी प्रकार बातें करती रहीं, दीवान जी ने आगे कुछ उत्तर न दिया। वे स्वयं करुणा को बहुत मानते थे। करुणा ने फिर कहा—दीवान जी मैं आपसे प्रार्थना करूँगी कि आप स्वयं सोच विचार कर यदि उचित समझें तो और उसके बाद माँ से आज्ञा लेलें, और शीतल के बैलों और जानवरों को वापस करदें। उसके साथ दया करके उसको यह समझाइये और आज्ञा दीजिये कि वह आपको धीरे-धीरे रुपया देता जाय।

शीतल के मामले में यही हुआ। उसको बैल और जानवरों के वापस मिल जाने पर रियासत में स्थान-स्थान पर उसकी चर्चा होने लगी। करुणा के द्वारा होने वाले ये उपकार रियासत में

फैलने लगे। करुणा जो कुछ करती, उच्च अधिकारियों के मान की रक्षा करते हुए, उन्हीं के द्वारा करती। जो कुछ होता, रानी साहिबा की आज्ञा पर ही होता; परन्तु रियासत के स्त्री-पुरुष, इन उपकारों का श्रेय करुणा को ही देते। समय-समय पर करुणा के गुण, स्वभाव की अलोचना करते-करते वे लोग कहने लगते, फिर जब से देवी जी आयी हैं, रियासत में जैसे किसी ने जीवन पैदा कर दिया है।

कोई कहता—सचमुच ही वह देवी है, जिस समय मोटर पर निकलती है, उसके शरीर पर नूर बरसता है। लेकिन वाह रे स्वभाव, ग़रीबों से उसको बड़ा स्नेह है।

इसी प्रकार जिसके जी में जो आता, कह डालता। रानी का राज्य था, परन्तु प्रशंसा करुणा की होती! मोटर पर बैठकर सावित्री और करुणा जब कभी रियासत में निकलतीं, तो स्थान-स्थान पर स्त्री-पुरुष, करुणा को पहचानने की चेष्टा करते। निकल जाने पर वे लोग एक-दूसरे को बताते, वही तो है जो बहुत गोरी-गोरी है, बड़ा सुन्दर रूप है, देखने में बङ्गालिन मालूम पड़ती है।

इस बार रियासत आने के पहले की बात है, एक दिन करुणा ने रानी से प्रस्ताव किया था, माँ, मैं एक बात सोच रही हूं, सावित्री को ईश्वर ने तपस्विनी बनाया है, सावित्री सचमुच ही तपस्विनी होगयी है। मैं चाहती हूँ कि उनके नाम से कुछ ऐसा काम हो, जिससे उनका चारो ओर नाम हो जाय और उसके साथ ही सहस्रों दीन-दरिद्र अपने अन्तःकरण से सावित्री को शुभ आशीर्वाद दें।

रानी इसके लिये उत्सुक हो उठी, सावित्री पर तो जैसे करुणा ने जादू किया हो। सावित्री की प्रसन्नता और रानी की उत्सुकता को देखकर करुणा ने कहा—अपने देश में स्त्रियों का जीवन बहुत

दुखी है वे किसी योग्य हैं भी नहीं। जो स्कूल और कालेज स्त्रियों के लिए खुले हैं, उनमें अनेक बातों की कमी है। यदि ऐसा भवन या विद्यालय खोला जाय, जहाँ अशिक्षित स्त्रियाँ तरह-तरह के काम सीख सकें और थोड़े समय में ही अपने जीवन के लिए अधिक उपयोगी हो सकें तो कैसा हो!

करुणा की बात सुनकर रानी ने हँसकर कहा—तो बेटी इसके लिए क्या हो सकता है?

करुणा—यदि आप चाहेंगी और आज्ञा देंगी, तो सब कुछ हो सकता है।

रानी ने हर्षपूर्वक इसको स्वीकार कर लिया और कह दिया—तुम और सावित्री मिलकर इसकी योजना करो। मुझसे जो कुछ कहोगी, मैं तैयार हूँ।

रानी के स्वीकार कर लेने पर करुणा को बड़ी प्रसन्नता हुई, सावित्री के हृदय में करुणा के लिए जितना आदर-भाव था, उसकी अनंत वृद्धि हो गई। करुणा और सावित्री प्रायः बैठकर उस योजना की बातें करतीं और अनेक प्रकार की बातें सोचतीं। बातें करते-करते करुणा कभी-कभी सावित्री को समझाती, यदि यह किया जा सका, जैसी कि उसके होने की पूर्ण आशा है तो सावित्री तुम्हें जो कीर्त्ति मिलेगी, उसको आज बताया नहीं जा सकता। करुणा की इन बातों से सावित्री का हृदय आनन्द और आह्लाद से परिपूर्ण हो जाता।

कुछ दिनों के बाद करुणा और सावित्री के साथ रानी प्रयाग चली आईं। कई दिन बीत गये। लोकनाथ इसी बीच में राय-बरेली—अपने घर गये हुए थे। एक दिन करुणा अपने कमरे में सावित्री के साथ बैठी हुई थी और रामायण पढ़ रही थी, उसी

समय लोकनाथ आगये। लोकनाथ के भीतर आते ही, साथ में दुर्गा को देखकर करुणा मारे प्रसन्नता के, दुर्गा से लिपट गई। दुर्गा को भी बड़ी खुशी हुई। इस भेंट के पश्चात् करुणा ने दुर्गा को बैठाया। लोकनाथ ने कहा—करुणा तुमने दुर्गा के सम्बन्ध में कुछ जाना है?

किसी भय और आशङ्का को अनुभव करती हुई करुणा ने कहा—नहीं तो, क्या बात है?

लोकनाथ ने रामऔतार की बताई हुई कथा कहानी आरम्भ की। लोकनाथ कह रहा था, करुणा सुन रही थी, सावित्री कभी दुर्गा की तरफ़ देखती और कभी बातें सुनने लगती, दुर्गा सिर झुकाये बैठी थी। लोकनाथ ने एक-एक बात को समझाकर कहा और जैसे ही उसने बताया कि दुर्गा के आदमी ने दुर्गा को छोड़-कर अपना दूसरा ब्याह कर लिया है, करुणा की आँखों से आँसू गिरने लगे। बड़ी देर तक करुणा लोकनाथ की बातें सुनती रही। बातें सुन चुकने पर करुणा ने अपने आँसू पोंछे और दुर्गा से कहा—मुझे इन बातों का कुछ पता न था। खैर, जो कुछ हुआ। हम स्त्रियों को ईश्वर ने इसीलिए उत्पन्न किया है कि पत्थर होकर हम इन बातों को सहन करें। तुम मेरे पास आगयी मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब तुम किसी बात का रञ्ज न करना हमारे साथ यहीं पर रहना। सावित्री को देखो, हमारी रा[illegible] साहिबा की बहू हैं। ये विधवा हैं। इनको देखो, ईश्वर की लीला [illegible] देखो, परन्तु कुछ नहीं, ये बड़ी प्रसन्न रहती हैं, तुम यहाँ आग[illegible] यह अच्छा ही हुआ। यहाँ हम लोगों के साथ, तुमको क[illegible] अपने दुखी जीवन का स्मरण न आयेगा। हम तीनों ही मिलकर उस ओर बढ़ेंगी जहाँ का जीवन ही कुछ और है। उस जीवन

ं रञ्ज, दुःख, क्लेश, वेदना—ये कुछ नहीं हैं ! उसमें सुख है, सन्तोष है, प्रसन्नता है। मनुष्य जब तक अपने ही दुःख और सुख की खोज और कल्पना करता रहता है, तभी तक उसको अशान्ति और असन्तोष का अनुभव होता है, परन्तु जिस दिन वह दीनों, दरिद्रों और असहायों की सहायता का शुभ संकल्प कर लेता है, उस दिन से वह उस सुख और संतोष का अधिकारी बन जाता है, जो अगाध है ! अनन्त है !

कुछ देर करुणा चुप रह कर दुर्गा से चाचा और चाची का हाल पूछने लगी। घर का हाल पूछ कर करुणा ने उन सभी लोगों को पूछा जिनको वह जानती थी।

दुर्गा उस दिन से करुणा के साथ रहने लगी और जीवन की उन सभी बातों को वह धीरे धीरे भूलने लगी जिनको वह बनऊ में रहकर रात दिन अनुभव किया करती थी।

5554 : 21.6.56

58201 : 20.11.58

D83
22.4.58 : 19-9-59

6472 : 30-5-60

D3
29-4-60 : 1-7-60

6477 : 12-7-60

5554 : 21.6.56

5820 : 20.11.5

D 83
22.4.58 . 19-9-59

6472 : 30-5-60

D 3
29-4-60 1-7-60

6477 : 12-7-60